हिन्दी

शीराज़ा

जे. एंड के. अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंगवेजिज़, जम्मू

द्विमासिक

हिन्दी

वर्ष : 31

अंक : 1, 2

अप्रैल-जुलाई 1995

पूर्णांक 128

प्रमुख सम्पादक
बलवंत ठाकुर

सम्पादक
डॉ० उषा व्यास

संपर्क : सम्पादक, शीराज़ा हिन्दी, जे० एंड के० अकादमी ऑफ आर्ट कल्चर
एंड लैंग्वेजिज जम्मू ।
फ़ोन : 47643 : 49576

मूल्य : 4 रुपये

वार्षिक : 10 रुपये

प्रकाशक : बलवंत ठाकुर, सेक्रेटरी, अकादमी ऑफ आर्ट कल्चर
एंड लैंग्वेजिज जम्मू 180001

मुद्रक : मैसर्ज रोहिणी प्रिंटर्ज, कोट किशन चन्द जालन्धर—144004

इस अंक में–

आलेख

प्रसाद के नाटक : एक और दृष्टि

□ महेश आनन्द

हिन्दी नाटक और रंगमंच की प्रकृति और रंगमूल्यों को पहचानने का कार्य तब तक अधूरा रहेगा, जब तक हम अपनी नाट्य-परंपरा से साक्षात्कार नहीं करेंगे। इस दृष्टि से जयशंकर प्रसाद के नाटकों का विशेष महत्व है। भारतेन्दु के बाद इन्हीं के नाट्य-लेखन एवं चिंतन से हिन्दी रंगमंच की तलाश का दूसरा चरण शुरू होता है। प्रसाद अपने संपूर्ण रंगकर्म द्वारा जीवन-दर्शन और नाट्य रूप के बीच संपूर्णता को तलाशने का प्रयास करते रहे हैं। इसी प्रक्रिया में उनके नाटक जिस तीव्रता और सघनता के साथ राजनीतिक तनावों के भीतर व्यक्ति और समाज के संबन्धों का दृश्यांकन करते हैं, उतनी ही गहराई से रंगमाध्यम के अनेक पक्षों से जूझते हुए ऐसे नाट्य-रूप का रेखांकन भी करते हैं, जो जीवन के अनेक आयामों और अन्तर्विरोधों को सार्थक नाटकीय रूपाकार दे सकने में समर्थ हो सके। इस तरह वे एक साथ समकालीन जीवन और रंगकर्म का सामना करते हुए उनके सही रूप का अन्वेषण करते है। उनकी यह रंगयात्रा अचानक शुरू न होकर सोच-समझ के साथ की गई यात्रा है, जिसके द्वारा उन्होंने रंगमंच में बुनियादी परिवर्तन लाने की सार्थक कोशिश की है।

इस प्रक्रिया में वे अनेक परंपराओं से प्राप्त रंगयुक्तियों, रूढ़ियों एवं व्यवहारों का रचनात्मक निर्वाह करते हुए, जिस कोण से मानवीय अनुभवों से साक्षात्कार कराते हैं, उसमें इनके नाटकों की अंत: प्रकृति अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व का निर्माण करती है। इनके नाटकों की आलोचना इस बात को लेकर नहीं की जानी चाहिए कि उन्होंने पारसी रंगशैली के कई तत्वों को अपनाया है। कोई भी परंपरा अपने में अच्छी या बुरी नहीं होती। मुख्य बात रंगतत्वों के कलात्मक उपयोग से प्राप्त उस सार्थक नाट्य रूप की है, जिसके द्वारा नाटककार युगीन सत्य को जीवंत दृश्यात्मक रचना का रूप देता है। इस दृष्टि से भी आलोचना करना संगत न होगा कि उन्होंने केवल ऐतिहासिक कथानकों को आधार बनाकर नाटक लिखे हैं। रंगमंच के जीवंत एवं गतिमूलक रूप की उपेक्षा करते हुए जब प्रेमचन्द जैसे

साहित्यकार ने इन्हें 'गड़े मुर्दों को उखाड़ने' वाला कहा तो इनके आलोचकों की एक लम्बी कतार बनती चली गई। प्रेमचन्द ने प्रसाद को सलाह दी थी कि उन्हें अपनी शक्ति का उपयोग वर्तमान सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं को हल करने में लगाना चाहिए। प्रश्न उठता है कि क्या इनके नाटकों में ऐसा कुछ नहीं मिलता? जो इस दृष्टि से उपयोगी हो। क्या प्रसाद द्वारा व्यक्ति और समाज के शाश्वत प्रश्नों और चिन्ताओं का अंकन अद्यतम नहीं बनता। अगर इनके नाटकों से उभरती हुई गैर यथार्थवादी रंगशैली के परिप्रेक्ष्य में निहितार्थ की तलाश करें तो स्पष्ट होता है कि प्रसाद के नाटक दृश्यत्व और काव्यत्व के संतुलन द्वारा जटिल और बहुस्तरीय यथार्थ व्यंजित करते हैं। इसीलिए इनके नाटक मानव समाज के गहन प्रश्नों से जूझते हुए समकालीन थे और आज भी प्रासंगिक हैं।

वे जिस बौद्धिक स्तर पर अपने नाटकों में औपनिवेशिक राजसत्ता या दासता के विरुद्ध संघर्ष का अंकन करते हैं, उसमें इतिहास जातीय स्मृतियों को जगाने वाला माध्यम बन गया है। तभी तो उनके नाटकों में चित्रित संघर्ष केवल राजनीतिक नहीं रहता, वरन् राजसत्ता से पनपी मानसिकता के विरुद्ध भी होता है। प्रसाद इस संघर्ष को पारसी नाटकों की तरह अतिरंजित शैली में प्रस्तुत नहीं करते। वे बड़ी सूक्ष्मता से राजनीतिक प्रश्नों के साथ जातीय स्मृति के स्तर पर दर्शकों को उद्बोधित करते दिखाई देते हैं। इसी सोच के कारण वह कार्नेलिया से कहलवाते हैं, कि यह शुद्ध 'ग्रीक और भारतीय अस्त्र का ही नहीं, इसमें दो बुद्धियां भी लड़ रही हैं।' यह वह प्रश्नाकुलता है जिसके भीतर वह पूर्व और पश्चिम के द्वन्द्व की ओर सजग करते हुए वैचारिक लड़ाई की ओर प्रेरित करते हैं। यहां प्रसाद रहस्यवाद या अध्यात्मवाद की ओर न ले जाकर जटिल यथार्थ से परिचय कराते हुए निश्चित कर्म की ओर ले जाने का प्रयास करते हैं। इसी के साथ वे नयी संस्कृति से आए सामाजिक बदलाव एवं उसकी त्रासद-स्थिति को भी अभिव्यक्ति देते हैं। निश्चित रूप से प्रसाद नाटकों के माध्यम से अतीत के स्वर्णिम युग की वकालत नहीं करते और न ही उसकी कहानी सुनाना उनका उद्देश्य रहा है। इसके लिए वह बोलचाल की भाषा का मोह त्याग कर तत्सम-प्रधान भाषा द्वारा ऐसे दृश्य बिम्बों का संयोजन करते हैं, जो हमारी जातीय स्मृतियों की ध्वनियों को छेड़ने में समर्थ हो सकें। परतंत्रता के उस युग में प्रसाद अपने लेखन द्वारा न केवल लड़ाई लड़ते रहे, बल्कि दूसरों का सही दिशा-निर्देश भी करते रहे। उनके लिए मानसिक-दासता शारीरिक-दासता से कहीं अधिक भयंकर है। जब 'स्कंदगुप्त' का भटार्क स्कंद के बराबर खड़ा होकर आजादी की लड़ाई लड़ता है, तब उसका हृदय-परिवर्तन केवल बाहरी कारणों से नहीं होता। वह औपनिवेशिक मानसिकता से मुक्ति पाने के लिए नया रास्ता चुनता है। इसी तरह 'कामना' नाटक में कामना की विलास से मुक्ति का प्रश्न इसी दासता से मुक्ति पाने के प्रश्न में बदल जाता है।

प्रसाद की रंगमंच संबन्धी धारणाओं और नाटकों से उभरती हुई महाकाव्यात्मक रंगपरिकल्पना इसी कथ्य को कई धरातलों पर परखने का प्रयास करती है जबकि हमारी नाट्यालोचना नये मानदंडों की तलाश से बचते हुए मनमाने सामान्यीकरण थोपकर इन्हें अनभिनेय घोषित करती रही। दूसरी ओर, पारसी रंग शैली में खेलकर शौकिया मंडलियों के असफल प्रदर्शनों ने इस धारणा को और अधिक मजबूत किया। यह दोनों

कोशिशें प्रसाद की सृजनात्मक अवधारणाओं एवं नाटकों की परिकल्पना से मुठभेड़ करने से बचती रही हैं। दोनों ने ही गैर-यथार्थवादी रंग-शैलियों की उन रूढ़ियों एवं व्यवहारों की तलाश नहीं की, जिनके आधार पर प्रसाद के नाटककार से साक्षात्कार किया जा सके। प्रसाद के समय से ही जिस नाट्यालोचना की शुरुआत हुई, उसमें सतही और इकहरे यथार्थ को पेश करने वाले यथार्थवादी रंगशिल्प के स्थूल रूप को ही नाट्यालोचना का एकमात्र अमोघ-अस्त्र बना दिया गया। सुधी आलोचक भूल गये कि रंगमंच के नियम गणित की तरह इतने कठोर नहीं होते कि उनके सांचों में प्रत्येक नाट्य रचना को पूरा उतारने की कोशिश की जाए। महत्वपूर्ण तो नाटक का वह भीतरी रंगमंच है, जिसके आधार पर वह दर्शकों तक संप्रेषित होता है। निरंतर अन्वेषण की प्रक्रिया में प्रसाद ने किसी नाटक में अपने को दोहराया नहीं है। उनके प्रत्येक नाटक का कथ्य अभिव्यक्ति के लिए अपना स्वतन्त्र रास्ता तैयार करता है। जरूरी हो जाता है कि नाटकों की अपनी ज़मीन से उभरती रंगपरिकल्पना की संभावनाओं को उद्घाटित करते हुए उनका विश्लेषण किया जाये। इसके विपरीत वस्तु, नेता, रस या पाश्चात्य नाट्य तत्वों को आरोपित करने वाले आलोचकों को प्रसाद के नाटक राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना के प्रसारक अवश्य लगे, परन्तु उन्हें रंग मूल्यों या दृश्यात्मक स्वरों की सार्थकता का अहसास नहीं हुआ। नाट्यालोचना के इस अन्तर्विरोध के कारण आलोचक यह तो कहते रहे कि 'प्रसाद के नाटक हिंदी साहित्य की विभूति हैं' क्योंकि इनके नाटकों में एक विशेष प्रकार का उदात्त तत्व है, जो इन्हें महत्वपूर्ण बनाता है', तो दूसरी ओर, वे यह जुमला भी कसते हैं कि दर्शक इन्हें समुचित रूप से ग्रहण नहीं कर सकते. क्योंकि 'स्थितियों, पात्रों, कार्य व्यापारों और संवादों के पारस्परिक सामंजस्य से नाटकों में जिस विश्वसनीयता की सृष्टि होती है, वह भी इन नाटकों में नहीं हो पाती'। यदि आलोचक प्रसाद के नाटकों के जिन तत्वों को विशेष प्रकार के उदात्त तत्वों की संज्ञा देते हैं, तो इनके नाटकों का रूप जो इन्हीं तत्वों से ही निर्मित होता है, वह प्रभावान्विति पैदा करने में असफल कैसे हो सकता है ? अगर रूप की दृष्टि से प्रसाद के नाटक वास्तव में असफल हैं, तो निश्चित रूप से उनके नाटकों से ऐसा कोई विज़न प्राप्त नहीं हो सकता, जिससे इन्हें उदात्त कहें अथवा इनका पुनर्मूल्यांकन करने के लिए बाध्य हो सकें। ऐसा नहीं हो सकता कि प्रसाद के नाटकों का सशक्त विचारात्मक धरातल तो सुरक्षित मिले, और उन का समग्र नाटकीय प्रभाव खंडित नजर आए। जब हमें प्रसाद के नाटक आंदोलित करते हैं, तो निश्चित रूप से ऐसा प्रसाद के विचार तत्वों, स्थितियों की प्रासंगिकता, पात्रों, कार्य-व्यापारों एवं संवादों के सामजस्य के कारण होता है। इन नाटकों द्वारा व्यंजित सत्य और उनके रूप के बीच जो रचनात्मक स्थिति बनती है, वह इनका अध्ययन करने अथवा इन्हें खेलने के लिये उत्तेजित करती है।

प्रसाद ने बीसवीं-सदी के चर्चित पारसी-रंगमच के दबावों के भीतर अपनी रंगयात्रा की शुरुआत की है। दूसरी ओर, मंच पर परखे जाने से पूर्व ही इनके नाटक प्रकाशित हो गए, इसलिये इनमें आई कुछ तकनीकी जटिलताओं का बार-बार उल्लेख करते हुए प्रसाद की सकारात्मक भूमिका को नकारना संगत नहीं है। यदि आधुनिक रगपद्धति के अनुकूल इनको खेलने के लिये कुछ परिवर्तन जरूरी लगें, तो इसे प्रसाद की असफलता या रंगकर्मियों की अनधिकार चेष्टा नहीं समझनी चाहिये। ऐसा करना प्रसाद के नाटककार को पहचानने का ही प्रयास है। इनके नाटकों के व्यापक चित्रफलक पर जीवन का जो गति-

मूलक रूप विश्लेषित होता है, उसमें राजनीतिक-सामाजिक धार्मिक स्थितियों के धरातल पर विभिन्न वर्गों के पात्रों की बदलती हुई मनोदशाओं एवं व्यक्तित्वों के कोमल-कठोर रूपों से निर्देशकों को नई-नई व्याख्याओं के अवसर मिलते हैं। इसलिए प्रसाद के नाटक ऐसे नहीं हैं जिन्हें आसानी से टाल दिया जाये। इन्हें एक सुनियोजित योजना के अन्तर्गत खेलने के प्रयास होने चाहिएं। इसी कोशिश से खेलने की एक परम्परा बनेगी और नाटकों का वास्तविक रंगमंच सामने आ सकेगा। केवल कुल असफल प्रदर्शनों के आधार पर हमें इनको रंगमंच के अयोग्य घोषित करने की जल्दबाजी नहीं करनी चाहिये। □

जम्मू-कश्मीर के लेखकों से विशेष अनुरोध

राज्य की कला, संस्कृति एवं साहित्य के सृजन एवं
विकास का साक्ष्य प्रस्तुत करती रचनाएं
आमंत्रित हैं, अविलम्ब भिजवाएं।

—सम्पादक

चिन्तन

आचार्य धर्मसूरी तथा संतकवि तुलसीदास का काव्य प्रयोजन

□ डॉ० भारत भूषण

आचार्य धर्मसूरी का समय 15वीं शताब्दी का पूर्वार्ध भाग माना जाता है। इन्होंने साहित्य रत्नाकर आदि तेरह ग्रन्थों की रचना की थी। जिनमें साहित्यरत्नाकर उनकी साहित्यशास्त्रीय रचना है। इस रचना का प्रथम तरंग "ग्रंथारम्भसमर्थनम्" काव्य प्रयोजनों को समर्पित है।

हिन्दी साहित्य के महान सन्त कवि गोस्वामी तुलसीदास का उद्देश्य काव्य सिद्धांतों का प्रतिपादन करना नहीं था। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वे काव्य-शास्त्र के परम्परागत सिद्धांतों से अनजान थे। यद्यपि उन्होंने किसी भी काव्यांग की विस्तृत एवं रीतिबद्ध विवेचना नहीं की है तथापि सभी काव्यांगों के सम्बन्ध में उनके विचार प्राप्त हैं। तुलसी की काव्यशास्त्रज्ञता विशेष तौर से "रामचरित मानस" में प्रकट हुई है। उन्होंने कवि और सहृदय पाठक दोनों की दृष्टि से विचार किया है।

आचार्य मम्मट ने काव्य प्रकाश में काव्य प्रयोजनों का वर्णन करते हुए कहा है—

"काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्य: परनिवृत्तये कांतासम्मितलयोपदेशयुजे॥" —का०प्र० 1/2

काव्य धारा के लिए अर्थ प्राप्ति के लिए व्यवहार ज्ञान के लिए अमंगल के निवारण के लिए सद्य: परमानन्द की प्राप्ति के लिए तथा प्रियतमा के समान मधुर उपदेश देने वाला होता है।

आचार्य धर्मसूरी ने भी आचार्य मम्मट के काव्य प्रयोजनों के आधार पर निम्न काव्य प्रयोजन प्रस्तुत किये हैं।

मीमांस्यं पुनरत्र काव्यममुना सिद्धयन्ति कीर्त्यादयो,
दुष्काव्यं हि निषेधभागितरथा रामायणादेः क्षतिः।
कांतासम्मिततोपदेशकृतया नार्येवकाव्यश्रिया,
स्वारस्यात् क्रियते हिताहित कृते पुंसां प्रवृत्यादिकम्।" —सा० र० 36

काव्य की मीमांसा की जाती है। जिसके अध्ययन से कीर्ति आदि की प्राप्ति होती है। दुष्टकाव्य ही निषिद्ध है, अन्यथा रामायण आदि सत्काव्यों की भी हानि होगी। यह कांता-सम्मित उपदेशक है। जिससे नारी के समान वचनों के द्वारा मनुष्य कर्तव्याकर्तव्य तथा हित-अहित के कार्यों में प्रवृत्त होता है।

आचार्य धर्मसूरी तथा तुलसीदास ने काव्य के प्रयोजनों, को सहृदय पाठक तथा कवि को दृष्टि में रख कर दो प्रकार का माना है—

1. मुख्य काव्य प्रयोजन/आंतरिक गौण काव्य प्रयोजन।

बाह्य काव्य प्रयोजन/गौण काव्य प्रयोजन।

मुख्य काव्य प्रयोजन/आंतरिक काव्य प्रयोजन

आनन्द प्राप्ति—

धर्मसूरी तथा तुलसीदास ने काव्य की रचना और उसके अनुशीलन से आनन्द प्राप्ति को प्रमुख काव्य प्रयोजन माना है।

"रसप्रसरनिर्भराः कविगिरां प्रसाराः परं
मुदं विदधते हृदिम्रदिमभाजि काव्यामृतैः।
सुधाकरकराङ्कुर व्यतिकरेण चन्द्रोपला
द्रवन्ति शिशिराश्चिरादपि न विन्ध्यवन्ध्योपला॥ ——सा० र० 1/30

तुलसीदास ने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादित किया है—

'स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा। मानस पृ० 1

'सज्जन कुमुद चकोर चित हित विसेषु वड़ लाहु॥ वही पृ० 16

इन उक्तियों में विदधते, प्रबोध आदि अनुभूतियों के अभाव में कवि तथा सहृदय पाठक दोनों को आनन्द की प्राप्ति नहीं होगी। मम्मट ने इसे "सद्यः परिनिवृत्ति" की संज्ञा दी है तो भामह ने भी 'प्रीति' से आनन्द के ही प्रति संकेत किया है—

(अ) काव्यामृताकलगा मृदुशीतलानि
श्रीराम दिव्ययरासा सुरभीकृतानि।' —सा० र० 1/34

(आ) 'रामचरित एहिनामा,
सुनत श्रवन पाईअ विश्रामा। —मानस पृ० 15

(र) 'कुलिस कठोर सोई छाती'
सुनि हरि चरित न जो हरषाती।' —मानस पृ० 49

भक्ति की प्रवृत्ति

धर्मसूरी ने रामभक्ति के कारण ही राम को अपने काव्य का नायक माना है। उन्हीं राम की स्तुति में उन्होंने साहित्यरत्नाकार का प्रत्येक श्लोक रचा है। रामभक्ति में ।वृत्ति भी काव्य का प्रयोजन है। इसकी पुष्टि में उन्होंने श्रुतियों से प्रमाण उद्धृत किए हैं—

'पुण्यश्लोकस्य चरितमुदाहरणमर्हति।
कीर्तयेच्च जगन्नाथं वेदं चापि समीरयेत॥' —सा० र० पृ० 76

तुलसीदास ने भी लगभग ऐसे ही विचार व्यक्त किए है—

मुनि दुर्लभ हरि भगति नर पावहिं बिनहि प्रयास।
जे यह कथा निरन्तर सुनहिं मानि बिस्वास॥"

—मानस पृ० 456

साहित्य शास्त्रीय परम्परा में उपर्युक्त काव्य प्रयोजनों का उल्लेख नहीं हुआ है, धर्मसूरी तथा तुलसी ने जैसे राम के प्रभुत्व का पुनः पुनः स्मरण दिलाया है, वैसे ही काव्य से भक्ति की सिद्धि का भी अनेकशः प्रतिपादन किया है। पार्वती के प्रति महादेव की निम्न उक्ति में राम गुणगान को अविचल भक्ति प्रदायक कहा गया है—

'विमल कथा हरिपद-दायनी.
भगति होई सुनि अनपायनी।" —मानस पृ० 418

वाणी की पावनता—

असत् कीर्तन से सत्कीर्तन श्रेयस्कर है। अतः भक्ति भावना के विकास के लिए वाणी की शुद्धता अनिवार्य है। धर्मसूरी के अनुसार—

'असदकीर्तनकान्तारपरिवर्तन पांसुलम् ?
वाचं शौरिकथालायङ्गयैव पुनीमहे। —सार० पृ० 62

प्रभु भक्ति अर्थात् ईश्वर की स्तुति हमारे मन को इस प्रकार पवित्र करती है। जिस प्रकार गंगा हमारे सभी पापों को अपने जल से धो डालती है।

गोस्वामी जी ने कविवाणी की पावनता को तो भक्ति भावना से सम्बन्धित प्रयोजन घोषित किया है। जिसे नवधा भक्ति के अंग कीर्तन का रूपान्तर स्वीकार किया जा सकता है।

(अ) "वुध वरनहि हरिजस अस जानी।
करहिं पुनीत सुफल निजबानी॥" —मानस पृ० 8

(आ) "कवि कुल जीवनु पावन जानी।
राम सीय जसु मंगल खानी।
तेहि ते मैं कछु कहा वखानी॥
करम पुनीत हेतु निज वाणी॥"

(र) 'निज गिरा' पावनि करन कारण राम जसु तुलसी कह्यो।"

प्रस्तुत उक्तियों में भक्तिरस पूर्ण रचना से कवि वाणी के पावन होने का प्रत्यक्ष वर्णन हैं। यहां काव्य वस्तु और लोकार्चित नायक ही उपयुक्त आधार हो सकते हैं। तभी तो धर्मसूरी ने कहा है—

"दिव्येनोत्तमनायकेन घटिता सेयं ममालंकृतिः
सद्वृत्ताकृतिना विदेहतनयावक्षोरूहस्थायिना।
तत्ताहग्दशकण्ठकीर्तिपयसो नैल्यावह श्रीजुषा
निस्त्रासेन महेन्द्रनीलमणिनोक्षरेण संशोभते॥ —सा० र० 1/32

लोकमंगल तथा अनिष्ट निवारण—

संस्कृत तथा हिन्दी के आचार्यों तथा कवियों का उद्देश्य मात्र ग्रन्थ रचना ही नहीं था अपितु उन रचनाओं से विशाल जनसमुदाय के कल्याण की भावना थी। तभी कहा है वही वाणी ताप (दैहिक, भौतिक और दैविक) हरण करने में समर्थ है जिससे प्रभु भजन हो—

सैवेह वाणी जनताघहारिणी,
सुधारिणी संसृति सिंधुतारिणी।
याऽनन्त:नामावलिदिव्यहारिणी
स्खलत्यदैर्यद्यपि सा विकारिणी ॥" —सा० र० पृ० 63

साहित्य में इस सम्बन्ध में अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं कि कवियों तथा आचार्यों ने अनिष्ट निवारण के लिए काव्य रचना की थी तुलसीदास ने भी विशाल जनसमुदाय को दृष्टि में रखते हुए अपनी काव्य कला को जनहित के लिए प्रयोग किया है—

(अ) 'मंगल भवन अमंगल हारी,
उमा सहित जेहि जपत मुरारी।' —मानस० पृ० 34

(अ) 'कीरति, भनिति भूति भलि सोई,
सुरसरि सम सब कहं हित होई ॥' वही पृ० 8

लोक मंगल की भावना उसी रचना में होगी जो भ्रम और पाप के निवारण में समर्थ हो. इसीलिए आलोच्य कवि ने विश्वमोहिनी माया और कलयुग के प्रभाव नाश में ही कवि वाणी की सार्थकता मानी है—

'मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।' —मानस पृ० 34

रामचरित के अध्ययन को आत्मा को शुद्ध करने वाला और पाप नाशक कहा गया है। इसे स्पष्ट करते हुए बाल्मीकी ने कहा है—

'इदं पवित्रं पापहंन पुण्यं वेदैश्च संमितम्।
य: पठेद्रामचरितं सर्वं पापै: प्रमुच्यते ॥' —बाल्मीकीय रामायण 1/98

ऐसी काव्य रचनाओं के अध्ययन के लिए आस्था होना अनिवार्य है। रामचरित मानस की पांच-सात चौपाइयों के नियमित पाठ से भी सहृदय पाठक को सम्पूर्ण काव्याध्ययन जैसा फल प्राप्त होता है—

'सत पंच चौपाई मनोहर जानि जो नर उर धरें।
दारुन अविद्या पंच जनित बिकार श्री रघुवीर हरे।' —मानस पृ० 458

इस प्रकरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसीदास ने भक्ति काव्य के अनुशीलन से संशय, अज्ञान, पाप आदि के क्षीण होने का दृढ़ शब्दों में उल्लेख किया है।

मोक्ष लाभ—

धर्मसूरी तथा तुलसीदास ने भक्त कवि होने के कारण मोक्ष प्राप्ति को काव्य का विशिष्ट प्रयोजन माना है। संस्कृत काव्य प्रयोजनों में भामह ने स्पष्ट कहा है—

(अ) "धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षयं कलासु च।
करोति कीर्ति प्रीतिञ्च साधुकाव्य निषेवणम् ॥" —भामह का० अ० 1/2

(आ) 'कीर्ति स्वर्ग फलामाहुश संसारं विपरिचतः । —सा० र० पृ० 60

(इ) 'निज सन्देह मोह भ्रम हरनी,
करौं कथा भवभरिता तरनी ।' —मानस पृ० 15

(ई) 'सकल सुमंगल दायक रघुनायक गुण गान ।
सादर सुनहिं ते तरहिं भवसिन्धु बिना जल जान ।। —मानस पृ० 353

सांसारिक मायाजाल में जकड़े हुए मानव के लिए ईश्वर भजन अर्थात् रामकथा का सर्जन और अनुशीलन मोक्षदायी है । हरिपददायिनी प्रभु कथा ही भक्त कवि को अभीष्ट है ।

सूक्ष्म अथवा मुख्य काव्य प्रयोजनों के अतिरिक्त भी कुछ वाह्य प्रयोजन धर्मसूरी तथा तुलसीदास ने स्वीकार किये हैं ।

वाह्य गौण काव्य प्रयोजन व्यवहार ज्ञान—

लौकिक व्यवहार ज्ञान के लिए भी काव्य का निर्माण किया जाता है । काव्य के अध्ययन से व्यवहार का ज्ञान सरलतापूर्वक हो जाता है । वेदादि के अनुशीलन से तो व्यवहार ज्ञान सम्भव है ही तथापि काव्य जैसे सरल एवं मनोरंजक साधन उपलब्ध होने पर कष्टकारी रास्ता क्यों अपनाया जाए । रामचरितमानस के अध्ययन से यह स्पष्ट ही हो जाता है कि हमें राम की तरह आचरण करना चाहिए, रावण की तरह नहीं ।

यश लाभ—

सहृदयों को द्रवित करने वाली रचना से यश प्राप्ति अवश्य होती है । अन्यथा उसकी रचना में कवि का श्रम व्यर्थ है—

जो प्रबन्ध बुध नहिं आदरहीं,
सो श्रम वादि वाल कवि करहीं । —मानस 8

आचार्य मम्मट ने काव्य हेतुओं की चर्चा करते हुए कहा है—

'शक्तिः कवित्वबीजरूपः संस्कार विशेषः यां बिना
काव्यं न प्रसरेत् प्रसृतं वा उपहसनीयं स्यात् ।।' —का० प्रा० 1/3 वृत्ति

विद्वानों द्वारा कवि की काव्य रचना आदर प्राप्त करने पर कवि को जिस गौरव की अनुभूति होती है । यहां उसी की अभिलाषा की गई है । यशस्वी कवि शाश्वत काल तक जीवित रहते हैं क्योंकि—

"कीर्ति यस्य सः जीवति" संस्कृत के एक कवि ने ठीक ही कहा है—

"जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धा कवीश्वराः ।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम् ।।"

अर्थ प्राप्ति—

काव्य के भौतिक प्रयोजनों में अर्थ प्राप्ति भी उद्देश्य है । यथा माघ को भोजराज से धन प्राप्त हुआ था । भारवि को एक श्लोक पर एक लाख स्वर्ण मुद्रा की प्राप्ति आदि इतिहास प्रसिद्ध कथा है । जिनसे यह सिद्ध होता है कि कवि आज भी काव्य रचना से धनार्जन करता है । किन्तु धर्मसूरी और तुलसीदास इसके अपवाद हैं । इन्होंने तो आश्रयदाता

नरेश अथवा धनी वर्ग को प्रसन्न करने के लिए रचित रचना तथा उससे धनार्जन की निन्दा की है।

(अ) अलंक्रिया पूर्वतरैः प्रणीता
न योजिताः काश्चन नायकेन।
कैश्चित् तु कुक्षिम्भरिभिर्निबद्धाः
क्षोदीयसा काश्चन नायकेन॥ —सा० र० 1/31

(आ) 'यद्यपि अकाल के संदर्भ में 'कवि वृन्द उदार दूनी न सुनी' मानस पृ० 8 उन्होंने यह प्रतिपादित किया है कि संसार में कवियों की संख्या के अनुरूप आश्रयदाता नहीं हैं। तथापि उनका मूल प्रतिपाद्य यही है कि धन प्राप्ति के के उद्देश्य से रचित रचना में अन्तः प्रेरणा का अभाव रहता है। उन्होंने राम यशोगान में उन्हीं कवियों को सफल माना है जो आर्थिक प्रलोभनों के वशीभूत न हों और जिन्हें अपनी प्रतिभा का घमण्ड भी न हो।

(इ) जाको जस गावत कवि कोविद।
जिन्ह के लोभ, मोह, मद मारन॥ —विनय पत्रिका पृ० 287

इस प्रकार के पेशेवर कवि अन्य सांसरिक जीवों की भांति लोभ के अधीन रहते हैं जिसकी तुलसीदास ने स्पष्ट भर्त्सना की है।

(ई) 'ग्यानी तापस सूर कवि कोविद गुण आगार।
केहि कै लोभ विडंवना कीन्हि न एहि संसार॥ —दोहावली पृ० 90

राम के बिना काव्य काव्य ही नहीं है—

(उ) काव्यामृतकलनया मृदुशीतलानि,
श्रीरामदिव्ययशसा सुरभीकृतानि।
येषां मनांसि धनसारसमानि तेषां,
ऐषा कृतवितनु तां कमपि प्रहर्षम्॥ —सा० र० 1/34

(ऊ) रामचरित राकेश कर सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित हित विसेषि बड़ लाहु॥ —मानस पृ० 16

आचार्य धर्मसूरी तथा तुलसीदास के समय एवं स्थान में विभिन्नता होने पर भी इनके विचारों में समानता है। धर्मसूरी ने अपनी रचना साहित्यरत्नाकर में राम को नायक रूप में चित्रित किया है। राम से सम्बन्धित पद्यों को ही उदाहरण रूप मे प्रतिपादित किया है। किसी भी कवि द्वारा रचित श्लोक को उदाहरण रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया है।

तुलसीदास ने भी रामचरित मानस के माध्यम से राम कथा को जन मानस तक पहुंचाया है। राम नाम से शून्य काव्य रचना को तो उन्होंने काव्य की संज्ञा देने में संकोच किया है।

धर्मसूरी तथा तुलसीदास ने काव्य रचना के प्रयोजनों पर विविध प्रसंगों में विचार प्रकट किए हैं। इन्होंने आनन्द प्राप्ति, वाणी की पावनता, लोकमंगल अनिष्ट निवारण और मोक्ष लाभ को आन्तरिक प्रयोजन स्वीकार किया है।

कवि को प्राप्त होनें वाला यश और अर्थ इसी के अन्तर्निहित है। □

वेद, महाभारत, पुराण के सन्दर्भ में कश्मीर

□ मोती लाल साक़ी

यदि हम गौर करें तो यह स्पष्ट होगा कि हमारा वर्तमान हमारे समृद्ध अतीत से कितना अधिक प्रभावित है। पुरातनकाल हमारे चेतन का मूल भी है और सत्य भी जिसे चाह कर भी विस्मृत करना सम्भव नहीं है।

इतिहास के गहन अध्ययन के लिये न केवल व्यापक दृष्टि और ज्ञान-बाहुल्य अपितु इससे सम्बद्ध विषयों का विशिष्ट बोध भी अपेक्षित है। जिन बातों का पता हमें किताबें पढ़ने से नहीं लगता वह हमें लोक-साहित्य, भाषा, रीति-रिवाज तथा जनमानस से लग जाता है। इस प्रकार अनेक सत्य उद्घाटित होते हैं जो पुस्तकों के माध्यम से सामने नहीं आ पाते। निस्संदेह जो कुछ इतिहासकार की लेखनी से अछूता रह जाता है वह जनमानस तथा कल्पना की धरोहर बन जाता है।

कश्मीर के इतिहास में, हिन्दुकाल में किसी विधवा स्त्री के केश मुंडन का उल्लेख नहीं मिलता जबकि कश्मीर में एक कहावत है कि ' कहीं दुल्हन के भी बाल न कटें।" यह प्रामाणिक है कि ऐसी रीति यहां कभी न कभी रही है। इस सन्दर्भ में यह कहना रोचक होगा कि सती प्रथा एक ऐसी प्रथा है जो कालांतर में आर्यों ने अपनायी। प्रसंगवश मुझे कश्मीरी के वरिष्ठ विद्वान मुहम्मद युसुफ टेंग का यह कथन पर्याप्त सार्थक और सटीक लगता है। कि "किसी भी स्थान के इतिहास के साथ वही न्याय कर सकता है जिसकी जड़ें उसकी भूमि में कहीं गहरे जा चुकी हों।"

दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि एक इतिहासकार को स्थान विशेष के लोगों की सभ्यता तथा संस्कृति की यात्रा के अतिरिक्त वहां के भूगोल, भाषा, साहित्य, लोक-साहित्य, सामाजिक जीवन आदि की पूरी-पूरी जानकारी होनी चाहिये। उसके लिए यह आवश्यक है कि वह पक्षधरता से दूर रहे। लिखते समय उसे अपनी मान्यताओं को अलग रख कर अपने आप को घटनाओं के गहरे सागर में उतार लेना चाहिये। उसके द्वारा निकाले गये निष्कर्ष

घटनाओं पर आधारित होने चाहिएं निजी पसन्द नापसन्द का इतिहास लेखन में कोई स्थान नहीं होता। परन्तु कई रूपों में पूर्वकाल की मान्यताएं इतिहास पर हावी हो गई हैं। जिसके कारण ये इतिहास के मुकाबले में चर्चाओं का विषय हो गई हैं। कश्मीर के सम्बन्ध में आज तक जो अनगिनत पुस्तकें लिखी गई हैं वे परिश्रम के अभाव में मूल कथन की पुष्टि करने में सक्षम नहीं हैं। इसमें लिखने वालों की व्यक्तिगत मान्यताएं बलवती हो गई हैं। चाहे वह 'कल्हण' हो या 'हसन खुइहामी' बीरवल काचरू हो या स्वयं ख्वाजा 'मुहम्मद आज़म द्यदमरी'। कश्मीरी संस्कृति से सम्बद्ध न होने के कारण सर अर्ल स्टाइन जैसे महान शोधकर्ता की दृष्टि भी कहीं-कहीं चूक गयी है। जहां तक कश्मीर के इतिहास के वैदिक, युद्ध-गाथा काल तथा पौराणिक स्रोतों का सम्बन्ध है स्टाइन के अतिरिक्त अन्य की दृष्टि इन पर पड़ी ही नहीं। वही बात बार-बार उद्धृत की गई है जो पहले नीलमत पुराण और तत्पश्चात राजतरंगिनी में कही गई है। 'सतीसर' से बात सीधी 'गोनन्द' तक आ पहुंचती है। बीच में रह गये युग का क्या हुआ ? इस सम्बन्ध में पूर्व इतिहासकारों को छोड़ आधुनिक इतिहासकारों ने भी यह शोध करने का कष्ट नहीं किया। वे केवल संकेत ही देते कि भिन्न-भिन्न साक्ष्य किस निष्कर्ष पर पहुंचाते है ?

आज तक लिखे गए कश्मीर से सम्बद्ध प्राय: सभी ऐतिहासिक ग्रन्थ मात्र उल्लेख, किस्सा गोई और दास्तान-तराशी के दायरे से निकल नहीं पाये हैं।

'सतीसर' सम्बन्धी देवमाला को भूगर्भवेत्ताओं ने तोड़ा और प्रागैतिहासिक काल को काफी सीमा तक पुरातत्ववेत्ताओं ने खोज निकाला किन्तु फिर भी हमारे इतिहासकार 'दो और दो चार' की सीमाओं से बाहर नहीं आ सके हैं। यह बात भी आश्चर्यजनक है। कश्मीर के इतिहासकार प्रस्तुत ऐतिहासिक सन्दर्भों से लाभ नहीं उठा पाये हैं। चीनी तथा यूनानी स्रोतों की बात रहने दें अपने देश के सन्दर्भों से भी वे परिचित नहीं दिखते। यही कारण है कि हमारे अतीत के बारे में बहुत कुछ अज्ञात रह गया है।

यह सत्य है कि आर्यों की प्राचीनतम पुस्तक ऋग्वेद में कश्मीर का ज़िक्र नहीं आया है किन्तु इसी वेद के दसवें मंडल में कश्मीर के नदों का ज़िक्र आया है किन्तु किसी भी इतिहासकार ने इस सन्दर्भ को छुआ तक नहीं है। ऋग्वेद का यह सन्दर्भ काफी महत्वपूर्ण है और इसी कारण से कश्मीर के इतिहास का वह काल हमें दृष्टिगोचर होता है जिसके सम्बन्ध में लिखित इतिहास में कोई उल्लेख नहीं है। मंडल में सम्मिलित श्लोक का अर्थ इस प्रकार है—

"हे गंगा, यमुने, सरस्वती, शतोद्री (सतलुज) प्रोश्नी ! (अमरावती-रावी) मेरी आराधना स्वीकार कर। स्किनी (अक्षणी-चिनाब) सहित सुन मुडवाढा तथा वितस्ता सहित सुन री अर्गिका, सुष्मा सहित सुन।"

ऋग्वेद की यह स्तुति इस प्रकार काफी महत्वपूर्ण है कि इसमें जिन नदों का नाम लिया गया है, हज़ारों वर्ष बीतने पर आज भी इनके नाम प्रामाणिक हैं। इससे स्पष्ट होता है कि जिस समय यह सूक्त रचा गया उस समय विभिन्न आर्य कबीले गंगा और यमुना के इस पार रहे हैं फलत: इस क्षेत्र के भूगोल, वस्तुस्थिति तथा क्षेत्रफल का ज्ञान उन्हें अवश्य था।

इस समय आर्य खाना-बदोशी तथा बस्तियां बसाने के मध्य युग में थे। वे पूर्व निवासियों

को निष्कासित कर के धीरे-धीरे अपने पैर जमा रहे थे । जो हड़प्पा सभ्यता हरियाणा तक बल्कि इस से भी आगे जड़ें पुष्ट किये हुए थी उस सभ्यता के खण्डहरों पर आर्य एक नई संस्कृति के निर्माण की तैयारी कर रहे थे । आर्य मूल में बंजारे थे । हड़प्पा-संस्कृति के नायक घर गृहस्थी वाले थे जो विधिवत बस्तियों तथा कस्बों में रहते थे । यह सोचना सम्भवतः असंगत न होगा कि पुरानी बस्तियों को देखकर ही बाद में आर्यों को विधिवत बस्तियां स्थापित करने का विचार हुआ हो । इस तरह जिस सभ्यता को हम वैदिक-सभ्यता कहते हैं उसे संवारने में प्राचीन हड़प्पा सभ्यता का योगदान उतना ही महत्वपूर्ण है जितना स्वयं आर्यों का था, जो इस सभ्यता के प्रवर्तक माने जाते हैं । इस काल के आर्य किस प्रकार खानाबदोशी तथा स्थायी आबादी के मध्य युग में थे इसका ज्ञान 'नदी-स्तुति' में लिखित 'मर्डोवाढा' नदी के ज़िक्र से होता है । यह नदी 'मड्यव-वॉडवन' के इलाके का सारा जल इकट्ठा करके लाती है और 'किश्तवाड़' के समीप चिनाव से जा मिलती है । यदि खानाबदोश आर्य अपने रेवड़ लेकर घास के मैदानों और चरागाहों में न घूमते होते तो इस पहाड़ी नदी का वर्णन ऋग्वेद में आना असभव होता । आज भी हमारे नगरों तथा कस्बों में रहने वाले पढ़े लिखे लोगों को सारा कश्मीर तो क्या कश्मीर के कई भाग, नाले तथा घास के विस्तृत मैदान भी मालूम नहीं । ऋग्वेद में लिखित इस नद का वर्णन नीलमत-पुराण की उस देवमालाई परम्परा को सार्थकता देता है जिसके अनुसार चन्द्रदेव के समय तक आर्य जाति के लोग ग्रीष्म-काल में यहां आते थे और शीतकाल में पर्वतों के पार चले जाते थे । लगता है इस युग में भी आर्यों ने कश्मीर का पग-पग नापा था । अपने रेवड़ लेकर घूमते ये बंजारे आर्य घास के खुले मैदानों और वनों के बीच स्थित चरागाहों से भिज्ञ थे । इसी के साथ एक और सत्य उद्घाटित होता है कि प्रारम्भिक वैदिक-युग में कश्मीर का क्षेत्र ''कशीर'' या 'कश्यपमर' आदि नामों से प्रसिद्ध न था । नहीं तो जहां कश्मीर की नदियों का वर्णन ऋग्वेद में आया है वहां उस क्षेत्र का नाम भी आता जिस क्षेत्र से यह नदियां निकलती थीं । ''नदी-स्तुति'' में न सही किन्तु दूसरे किसी श्लोक में इस क्षेत्र के नाम का उल्लेख अवश्य सम्भव था ।

नीलमत पुराण लगभग सातवीं शताब्दी में लिखा गया है जबकि ऋग्वेद 2500 ई० पूर्व और 1400 ई० पूर्व के बीच रचा गया माना जाता है । नीलमत पुराण की परम्परा कोई चार हजार वर्ष से अधिक पुरानी उस सच्चाई की ओर संकेत करती हैं जो देवमाला के रूप के लोक-मानस ने सुरक्षित रखा और अब वह दृश्य मान हो रहा है ।

यदि ऋग्वेद में केवल वितस्ता का ही नाम आया होता तो हम मानते कि यह संयोगवश हुआ है । हजारों वर्ष तक इसके नाम का अक्षुण्ण रहना इस कल्पना को भी नकारता है । अतः नदी-स्तुति में इसका नाम सम्मिलित होना काफी महत्वपूर्ण है किन्तु इसके साथ ही अक्षनी नाम भी आया है । उस नदी का दूसरा नाम चन्द्रभागा (चन्द्र का भाग) भी है । अक्षनी 'चिनाब' का वैदिक नाम है जिस का अर्थ है कृष्ण (काला) । इसी नाम का यूनानी रूप इस्कनस अर्थात् 'सिकन्दर' को हराने वाला नद है । किन्तु वास्तव में 'इस्कनस' भी अक्षनी नाम का यूनानी रूप ही है ।

चिनाब को वैदिक ऋषि ने इस्कनी नाम क्यों दिया ? क्योंकि उन्होंने ही उस नद को स्रोत से निकल कर घने वनों के बीच प्रवाहित होते देखा । इस सारे क्षेत्र में घने चीड़ों की छाया चिनाव के पानी में पड़ कर इसे काला बना देती है और सचमुच ही इस नद का जल

काला लगता है।

चिनाब को वैदिक कवि का इस्कनी नाम देना काफी संगत और सार्थक है। लगता है जिस कवि ने इस नद को यह नाम दिया है वह उस क्षेत्र से पूरी तरह वाकिफ था जहां से यह नद बहता है। युग-युग में ऐसे सुदूर क्षेत्र की जानकारी होना आर्यों को कश्मीर और इस के आसपास के प्रदेश का ज्ञान होने का सूचक है। इतना ही क्यों वितस्ता और चन्द्रभागा के साथ मिलने वाली ऐसी ही एक पहाड़ी नदी वैदिक काल की 'मरुडवाढ़ा' है। यह नदी किश्तवाड़ क्षेत्र में चिनाब से जा मिलती है। मानचित्र में इस नाले का नाम 'मरौ-वॉडवन' अंकित है जबकि साधारण लोग आज इसे 'मडयौ-स्यंद' कहते हैं। अपने लगभग 160 किलोमीटर के सफर में यह नाला अमरनाथ से 'नुन-कुन' शृंग तक हिमानियों का सारा जल समाहित करते हुए चिनाब में जा गिरता है। वेदों में इस नाले का वर्णन इस बात को दर्शाता है कि रेवड़ पालते हुए आर्यों को किन-किन पर्वतों तथा ढलानों से गुजरना पड़ता था। अब भाषायी परिवर्तन के कारण शहरी क्षेत्रों में 'ड़' का 'र' बन गया है और इसी कारण 'गुड़' के बदले गुर (घोड़ा), खडाऊं के बदले 'ख्राव', 'शुड' के बदले 'शुर' (शिषु) आदि प्रचलित हो गया है। मड्यौ-सिन्ध का वर्णन करते हुए स्टाइन लिखते हैं—

"इस बात पर चर्चा की आवश्यकता नहीं कि 'मडयौ-वॉडवन' जो इस प्रदेश तथा नदी का नाम है, स्वर विज्ञान के आधार पर वैदिक 'मरुडवाढा' नाम से उसकी बड़ी समता है। राजतरंगिनी में यद्यपि इस नदी का कोई जिक्र नहीं आया किन्तु स्वरविज्ञान संबंधी समता उसका परिवर्तित रूप दर्शाती है जो कश्मीरी के भाषायी रूप के अनुरूप होता है।"

स्टाइन स्वयं मडयौ नहीं गये। नहीं तो वे सीधे तौर पर नाले का नाम 'मडयौ-स्यंद' लिखते और उन्हें वन शब्द पर चर्चा करने की आवश्यकता न पड़ती। 'वन' शब्द प्रत्यय के लिए आता है यथा—'काय-वन', 'रूप-वन', 'दण्डक-वन' आदि। अब जहां तक सिंधु शब्द का संबंध है इसके बारे में विचार-विमर्श की आवश्यकता है। ऋग्वेद के कुछ श्लोकों में आए सिंधु शब्द का अनुवाद समुद्र हो सकता है किन्तु इसका परिवर्तित अर्थ भौगोलिक स्थितियों को दृष्टि में रख कर समझा जा सकेगा। ऐसे भी स्थान हैं जहां लोग मूल सिंधु को तैर कर पार कर सकते हैं।

किन्तु कुछ स्थानों में सिंधु नदी इतनी चौड़ी है कि किनारे पर खड़ा व्यक्ति समझ ही नहीं पाता कि वह नदी के किनारे खड़ा है अथवा सागर के। मैक्समूलर के अनुसार सिंधु शब्द का अर्थ विभाजन या विभाजक है। रक्षक और मुंह लगने वाला भी है। इस शब्द का स्रोत 'सिधु' अर्थात् 'दूर रखना' या 'पीछे रखना' है। यह शब्द पहले पुलिंग था और फिर स्त्रीलिंग बना। एक महान नद को, जो वहां के निवासियों और आक्रांताओं को वनैले पशुओं से बचाता हो। इससे अच्छा नाम और क्या दिया जा सकता था। चुनांचे प्राचीन आर्य बस्तियों का साधारण नाम भारत में सप्त-सिंधु अर्थात् सात नदों का क्षेत्र था। भारतवर्ष के इतिहास में यह नाम सब से बड़े नद के लिए विशिष्ट रूप से प्रयुक्त हुआ। इन सात नदियों में पंजाब की पांच नदियां भी सम्मिलित थीं। कश्मीर के बारे में सिंधु नद, एक ऐसा महा नद है जिसे पार करना कठिन है और जो बाढ़ में सर्वनाशी है; ऐसे अर्थों में प्रयुक्त हुआ है।

सिंधु शब्द के और भी अर्थ माने गये हैं। आर्यावर्त का 'हिन्दुस्तान' नाम पड़ने का कारण भी यही नद है। वस्तुत: सिंधु क्षेत्र के पड़ोसी लोग ईरानी भाषा बोलते थे जो 'स' का उच्चारण 'ह' करते थे। इस प्रकार सिंधु हिन्दू बना। 'ह' उस काल में लुप्त हो जाता था। इस प्रकार हिन्दू इन्दू बना। इसलिए यूनानियों के समीप सिंधु "इन्दोस" बना और लोग "इन्दोई"।

ऋग्वेद के नद-स्तुति-सूक्त में कश्मीर के तीन और नाम यदि इन में सिंधु भी जोड़ें, तो चार नदों का सम्मिलित होना प्रमाणित करता है कि वैदिककाल के लोगों को कश्मीर की न केवल साधारण जानकारी रही है अपितु उन्हें उस क्षेत्र का भौगोलिक ज्ञान भी रहा है जिस को हम आज कश्मीर कहते हैं और यदि राजनैतिक भाषा में कहें तो वर्तमान जम्मू-कश्मीर राज्य का कश्मीर के साथ उनका संबंध किसी न किसी प्रकार हर काल में रहा है।

बात स्पष्ट करने हेतु वैदिककालीन सप्तसिन्धु क्षेत्र जिसे नद-स्तुति में लिखित सात बड़े नद नद सींचते थे। आर० एन० सलतोर सप्त सिन्धु के नदों में गंगा, यमुना, सरस्वती, सतलुज, रावी तथा चिनाब को गिनते हैं किन्तु वे सिन्धु और वितस्ता का नाम देना भूल गए हैं हालांकि इसका स्मरण स्वयं नद-स्तुति भी देती है और साथ ही भौगोलिक परिभाषा पंच-नद भी जिसका नाम पंजाब पड़ा। इसी प्रकार एस० सी० रे० का यह कथन भी विचित्र लगता है—"कहा जाता है कि वेदों में 'मड्यौ वड्वन" नाम का वर्णन आया है - लगता है दोनों विद्वान मित्रों ने स्वयं वेद पढ़ने का कष्ट नहीं किया है और इसी का ण उनकी दृष्टि वास्तविकता से हट गई है। नद-स्तुति राजतरंगिनी का अनुवाद करते समय अर्ल स्टाइन की दृष्टि में भी यह बात नहीं रही है। किन्तु यह कमी उन्होंने उस समय पूरी की जब 1921 ई० में नद-स्तुति के आधार पर उन्होंने "Some River Names in Rigveda" (ऋग्वेद में कुछ नदियों के नाम) पुस्तिका प्रकाशित की।

वैदिककाल से ही कश्मीर के साथ आर्यों के सम्बन्ध की पुष्टि कुछ दूसरी चीज़ें भी करती हैं जिनका साक्ष्य कश्मीरी भाषा और कुछ कश्मीरी रीति रिवाज भी हैं। ये ऐसे साक्ष्य हैं जिनके तल तक पहुंचना किसी कश्मीरी के अतिरिक्त अन्य शोधकर्ता के लिए असम्भव तो नहीं पर कठिन अवश्य है। यही कारण है कि प्राय: सभी इतिहासकार कश्मीर के इतिहास के विभिन्न विवादों को निकाल नहीं पाये हैं और कश्मीरी इतिहासकारों की नज़र भी इधर-उधर भटक गई है।

पहले हम कश्मीरी भाषा की बात लें जिसके सम्बन्ध में कई दृष्टिकोण हैं और प्राय: सभी इस बात से सहमत हैं कि वास्तव में इसका सम्बन्ध पिशाच भाषाओं के परिवार से है। पिशाच नाम सुन कर कान खड़े करने की आवश्यकता नहीं। पिशाच भी वास्तव में आर्य थे। विद्वानों का विचार है कि मैदानी क्षेत्रों में रहने वाले आर्य पर्वतीय क्षेत्रों में रहने वाले आर्यों को असभ्य जान कर पिशाच कहते थे। वास्तव में यह पर्वतीय आर्य काफी परिश्रमी और उपद्रवी थे। वे मैदानी क्षेत्रों में रहने वालों की बड़ाई स्वीकार करने को तैयार न थे। जिस कारण उन्होंने इन्हें पिशाच कहा और बदला लिया। यह भी कहा जाता है कि ऊपरी क्षेत्रों में रहने वाले आर्य पहले आये थे और मैदानी क्षेत्रों के बाद में। इस बात से कोई भी विज्ञ व्यक्ति इनकार नहीं कर सकेगा कि कश्मीरी शब्द कोश में

ऐसे शब्दों की खासी संख्या है जो आज भी किसी हद तक वैदिक रूप में विद्यमान है। वे शब्द आज भी एक निरक्षर कश्मीरी की जुबान पर विद्यमान हैं। इससे पता लगता है कि यह शब्द हज़ारों वर्षों से लोगों के स्मृति पटल पर सुरक्षित हैं। जन साधारण के स्मृति पटल पर रहने के कारण इन शब्दों को न संस्कृत मिटा सकी न फ़ारसी। यहां यह प्रश्न उठ सकता है कि ये शब्द संस्कृत से कश्मीरी में आए होंगे किन्तु स्वयं संस्कृत में इन शब्दों का रूप बिगड़ा है. परिवर्तित हुआ है। शब्दों का वस्तुस्थिति में कश्मीरी का हिस्सा होना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि कश्मीर सप्त-सिन्धु का भाग रहा है। कश्मीरी में वर्तित सभी वैदिक शब्दों को अंकित कर पाना न सम्भव है न उचित किन्तु उदाहरण के लिए यहां कुछ शब्द देना संगत होगा। पुर (पोर) दुर्ग, दास, खल (खलिहान), कुलाल, धान्य, कल्या, मुसुर (मसूर), मण्डल, वाक्य (वाख), खार, गन्धर्व, तेल, शतभोज, सब (सभा, कतार) उरून (कश्मीरी ओढना) विज (तेज़ आंधी) हान (हानि या लांछन) इत्यादि। कश्मीरी भाषा में बहुत से 'आस्ट्रिक' शब्द भी मौजूद हैं। आस्ट्रिक वे लोग हैं जिन्हें संस्कृत ग्रन्थों में निशाद नाम दिया गया है आस्ट्रिकों के सम्बन्ध में यह कहना उचित होगा कि 'खश' तथा 'आस्ट्रिक' पश्चिम की ओर से आर्यों से पहले भारत आये। फिर जब आर्य भारी टुकड़ियों में आये तो उन्होंने दोनों जातियों को इधर-उधर धकेला और आगे बढ़े। कश्मीरी में अल (कद्दू) वांगुन (बैंगन), दॉन (अनार) आदि शब्द वास्तव में आस्ट्रिक हैं। शब्दों की गहराई में जाना कुछ मित्रों को यह प्रश्न करने पर विवश कर सकता है कि किसी भाषा के कुछ शब्दों का इतिहास से सम्बन्ध है किन्तु यह बात जानना आवश्यक है कि भाषा उस काल का एक पूर्ण अभिलेख है जब लिखने पढ़ने का श्रीगणेश नहीं हुआ था। चुनांचे वेदों की भाषा के आधार पर यह सत्य सिद्ध हुआ कि भारतीय आर्य उसी महान परिवार का अंग रहे हैं जो परिवार ईरान तथा यूनान सहित सारे यूरोप में इस समय बसा हुआ है।

वंशों से जुड़े सबसे कठिन उलझाव हल करने में भाषा एक ऐसा प्रमाण प्रस्तुत करती है जिसको चुनौती नहीं दी जा सकती। भाषा केवल अभिव्यक्ति का ही माध्यम नहीं अपितु यह सांस्कृतिक, वांशिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक समस्याओं को हल करने का महत्वपूर्ण कार्य भी करती है। कश्मीरी 'बुर्ज' तथा रूसी 'ब्यर्ज़' (भोज पत्र) समानार्थक शब्द हैं जिस से स्पष्ट होता है कि कभी पुराने ज़माने में रूसी तथा कश्मीरी एक ही जाति के सदस्य अर्थात एक ही पेड़ के फल रहे हैं।

हमारे कश्मीर में नियम है कि पिता की सम्पत्ति पुत्र को मिलती है न कि पुत्री को। लड़की उस समय पिता की सम्पत्ति की अधिकारिणी बनती है जब पिता का कोई पुत्र न हो। इसी प्रकार दत्तक-पुत्र का हमारे समाज में आज तक रिवाज है और इसे उचित समझा जाता है। यह सामाजिक कानून वैदिक हैं और पूर्वकाल से आज तक हमारे सर्वसाधारण सामाजिक जीवन का हिस्सा है। कश्मीर में यद्यपि काफी पहले बहुसंख्य लोगों ने इस्लाम स्वीकार किया उसके बावजूद यह समाजी, कानूनी मुसलमानों में एक जीवंत सच्चाई है। इसी प्रकार घर जमाई' रखना भी काफी पुरानी रसम है। यह रीति कश्मीर में सबके लिए प्रयुक्त होती है।

महाभारत उत्तर भारत का महाकाव्य है जब कि रामायण मध्य, पूर्वी तथा दक्षिणी भारत के सम्बन्ध में हमारी जानकारी में काफी बढ़ोतरी करता है। महाभारत के अनुसार

नाग 'कदरुओं' की सन्तान हैं और कश्यप के सम्बन्ध से कश्मीर का नाम 'कशीर' या 'कश्यप-मर' पड़ा है। इस प्रकार कश्मीर की उत्पत्ति में देवमाला का महाभारत के साथ सीधा सम्बन्ध जुड़ता है। गरुड़ के भय से नाग सतीसर में छिपने आये थे। देवमाला के पीछे जो वांशिक टकराव काम करता रहा है उस वांशिक टकराव को देवमाला कश्मीर से सम्बद्ध करना स्पष्ट करता है कि वीर-काल में भी कश्मीर के साथ भारत वर्ष का निकट सम्बन्ध रहा है। महाभारत में जिन विभिन्न नाग राजाओं के नाम आये हैं उनके नाम से सम्बद्ध कई स्थान अभी भी कश्मीर में मौजूद हैं।

महाभारत हिन्दुस्तान के पूर्व कालिक जीवन का अपने ढंग का एक मात्र विश्वकोश है, इसीलिए कहा गया है कि जो बात महाभारत में नहीं वह किसी अन्य स्थान पर नहीं है।

इसमें यद्यपि विभिन्न विभागों के संक्षिप्त सन्दर्भ आये हैं। किन्तु यह सन्दर्भ एक ऐतिहासिक निरन्तरता, एक वाकायदगी देखने तथा स्थापित करने में सहायक सिद्ध होते हैं। महाभारत भगवान बुद्ध से पूर्व रचा गया है। कुछ शोधकर्ता इसका रचना काल ईसवी पूर्व छठी शताब्दी और कुछ दसवीं से बारहवीं शताब्दी तक मानते हैं। यदि हम इसका रचना समय छठी शताब्दी मान लें तो उसका यह अर्थ हुआ कि असली महाभारत (युद्ध) इससे दो तीन सौ वर्ष पूर्व हुआ होगा। इस प्रकार महाभारत में मिले सन्दर्भ आज से पूर्व ढाई हज़ार वर्ष से अधिक पहले के समय का स्मरण और घटनाओं की अभिव्यक्ति करते हैं।

कुरुक्षेत्र के युद्ध में कश्मीर के राजा ने कौरवों का पक्ष लिया। इस बात की ओर कल्हण हमारा ध्यान बिना किसी विवरण के दिलाता है। किन्तु कुछ और स्रोत भी इसकी पुष्टि करते हैं। कश्मीर के पड़ोसी अभिसार (पुंछ तथा जम्मू क्षेत्र) के राजाओं ने भी इस युद्ध में कौरवों का पक्ष लिया। युद्ध में सम्मिलित होने के लिए इस राजा को भी इन्हीं क्षेत्रों से सेना लेकर चलना था जिस से पता लगता है कि उत्तर पश्चिम के इन राजाओं ने एक साथ मिल कर कौरवों का साथ दिया होगा। इस प्रकार कल्हण के वर्णन में सत्य की किरण दिखाई देती है। स्वयं महाभारत में कश्मीरियों का ज़िक्र 'खश्र' नाम से हुआ है जो 'कॉशुर' शब्द के काफी निकट है। महाभारत के पश्चात किसी हद तक पाणिनी तथा पातंजलि ने इसी प्रकार कश्मीर तथा कश्मीरियों का नाम लिया है। ये वही लोग हैं जिन्हें यूनानी 'कॉशिर' लिखते हैं। महाभारत में कश्मीर का नाम युद्ध समाप्त होने पर युधिष्ठिर को राजतिलक देने के अवसर पर आया है जब कश्मीर के एक पड़ोसी राजा ने पाण्डव राजा को स्वर्ण की भेंट दी। इस सोने का नाम पिपीलिका सोना दिया गया है अर्थात वह सोना जो चींटियों ने निकाला हो। ऐसा सोना प्राचीनकाल में सिन्धु के ऊपरी क्षेत्र में एकत्र किया जाता था। (विस्तार के लिए देखिए मेरा लेख-कश्मीरी इतिहास के यूनानी स्रोत 'सोन अदब' 1986 में प्रकाशित)। इसी प्रकार बिना किसी नामोल्लेख के उत्तर-क्षेत्र के राजाओं ने राजा को एक शाल भेंट किया। यह राजा गांधार, कश्मीर जनपद के राजा रहे होंगे क्योंकि यही क्षेत्र प्राचीनकाल से इन वस्तुओं के लिए प्रसिद्ध रहा है। 'सभा पर्व' में लिखा हैं कि राजा को उत्तर पूर्वी क्षेत्र के एक राजा ने ऐसा धागा पेश किया। जिसे कीड़ों ने तैयार किया था।

यह धागा केवल रेशम ही हो सकता है। उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र में कश्मीर के अतिरिक्त

कोई ऐसा स्थान नहीं जहां रेशम उत्पन्न होता हो । यद्यपि रेशम का मूल स्रोत स्थल चीन माना गया है किन्तु लगता है कि रेंशम या तो चीन से काफी पूर्वकाल में कश्मीर आया अन्यथा केसर की तरह ही रेशम भी कश्मीर की अपनी वस्तु है।

'वुलर' के सम्बन्ध में भी महाभारत में एक सन्दर्भ आता है। सुपर्ण अध्याय में स्पष्ट लिखा गया है कि महा-पद्म-नाग एक पर्वत शिखर पर स्थित सर में रहने के लिए चला गया। स्पष्ट है कि भारत वर्ष क्या सारे एशिया में वुलर सब से बड़ी झील है। कल्हण भी लिखता है कि गरुड़ के भय से दो नाग शंख तथा पद्म सर में सुरक्षार्थ चले गए। ये वही दो नाग हैं जिनका जिक्र सुपर्ण अध्याय में शङ्ख और पदम नाग से आया है। 'वोगल' लिखता है कि पद्म नाग वही है जिसे महा-पद्म कहा गया है और जो वुलर का रक्षक है। इस सर का ज़िक्र पुराणों में भी हुआ है। इस विषय में ए० ए० डांगे लिखते हैं—

"जिस 'सर' का ज़िक्र पद्म-नाग-सरस् अथवा महापद्मनाग नाम से हुआ है यह वही सर है जो कश्मीर की पर्वतीय घाटी में है।"

इसी प्रकार महाभारत में केसर का भी ज़िक्र आया है जो आदि काल से ही कश्मीर के साथ विशेष रूप से सम्बद्ध है। वीरकालीन युग में कश्मीर का शेष देश के साथ सम्बन्ध और सुदृढ़ हुआ। दूसरी एक परम्परा भी दोहराने योग्य है। वह यह कि पशुपत मत का ज़िक्र महाभारत में भी आया है क्योंकि एक युग में बहुत पहले इसी मत की परम्परा कश्मीर में रही है जिसने बाद में आठवीं शताब्दी में त्रिका-शास्त्र का रूप धारण किया। त्रिका-शास्त्र पर शून्यवाद तथा मूल-सर्वास्ति-वाद का भी गहरा प्रभाव पड़ा है। महाभारत में सम्मिलित कथा के अनुसार पशुपत मत का प्रचार पहले शिव श्रीकण्ठ ने किया और रोचक बात यह है कि कश्मीरी शैव मत प्रवर्तक तथा शिवागमन का सम्बन्ध भी श्रीकण्ठ ही के साथ है।

वायु-पुराण में कश्मीर का उल्लेख इस प्रकार हुआ है कि 'कश्मीरी' उत्तरी क्षेत्र की जातियों में शामिल हैं। विष्णु पुराण में 'कश्मीरी' नाम से कश्मीरियों का ज़िक्र; 'कनक गुनन', तेल ब्रासन, सीमरन, मधुमतन, स्कन्दकन, सिन्धु सावरन, गांधारन, दर्शकन, अभिसारन, उतलन, शिवालन, वामलिकाहन के बीच हुआ है। जिन विभिन्न जातियों तथा कबीलों का ज़िक्र आया है उन सब का संकेत नहीं मिल पाया है किन्तु कुछ के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक कहा जा सकता है कि सिन्धु सावर, पंजाब में सिंध पर निवास करते थे। इन्होंने महाभारत के युद्ध में विशेष भूमिका निभायी है। गांधारी उत्तर पश्चिम क्षेत्र के वासी रहे हैं इनका कश्मीर से विशेष सम्बन्ध था। एक समय 'कश्मीर गांधार' एक ही जनपद था।

दर्शक वे लोग हैं जिनका ज़िक्र दारोक नाम से भी हुआ है। यह पुंछ से इधर जम्मू क्षेत्र में रहते थे। प्रायः दर्शकों या दारोकों का ज़िक्र ध्रुव-अभिसार के मिश्रित शब्द में होता है अभिसारी पुंछ के वासी थे। जो वाहलिका 'बालिका' नाम से जाने जाते हैं जो 'बलख' के रहने वाले थे। महाभारत तथा छान्दोग्य उपनिषद् में यह क्षेत्र घोड़ों के कारण काफी प्रसिद्ध था। अर्जुन की दिग्विजय में इस क्षेत्र के सम्बन्ध में कहा गया है कि यहां पहुंचना बहुत कठिन था। विष्णु पुराण का एक संदर्भ खण्ड महाभारत से लिया गया है

जिसमें कहा गया है कि कश्मीरियों के पड़ोसी; कलटा, हुन, दर्शक तथा रामन जैसे असभ्य तथा भयंकर लोग हैं। इनमें से दर्शकों के सम्बन्ध में यह विचार है कि यह फ़ारस के रहने वाले हैं अथवा यह वे लोग हैं जो सिंध के पार रहते थे। दर्द तथा अभिसारी इस पुराण में निम्न जाति के माने गये हैं। खास ध्यान देने योग्य यह बात है कि कश्मीर के पड़ोसियों में वैश्य तथा शूद्र अलग-अलग जातियों में गिने गये हैं इनके रहने का क्षेत्र उत्तर पश्चिमी क्षेत्र है। "लेसन" के अनुसार शूद्रक तथा शूद्र एक हैं। पिलनी भी शूद्राची नाम लिख कर इस सन्दर्भ को प्रमाणित करता है। उसने यह नाम उन लोगों को दिया है जो सिकन्दर की पूर्वी विजय में उनके आने को चिन्हित कर रहे थे। इस दृष्टि से यह जाति पंजाब में रह रही थी।

वृहत् संहिता यद्यपि पुराण नहीं किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से इसका अपना महत्व है। इस पुस्तक के लेखक वराहमिहर ने कश्मीरियों का ज़िक्र अभिसारों, दर्दों, खशों तथा किरातों के साथ किया है जिसमें कोई अन्तर नहीं किन्तु कश्मीर को उत्तर पूर्व विभाग में सम्मिलित करना कुछ विचित्र सा लगता है। वराहमिहर की तरह छठी शताब्दी में शूद्रक ने भी कश्मीर का संक्षिप्त ज़िक्र किया है।

पुराणों में महाभारत की अपेक्षा कश्मीर का ज़िक्र सविस्तार होना चाहिए था। किन्तु बात इसके विपरीत है।

वीर-काल के पश्चात किन्तु पुराण-काल से पूर्व बौद्ध धर्म कश्मीर में पहुंचा और उसका यहां महान उत्थान हुआ। कश्मीर 'महायान' का एक सशक्त केन्द्र बन गया। पुराण के रचयिताओं को बौद्ध धर्म में रुचि न थी अतः उन्हें कश्मीर से क्या लगाव होता? क्योंकि वे पुराणकार थे और कश्मीर का वृत्तान्त देना उनके लिये असंगत था। पुराण कुछ विशेष उद्देश्यों से लिखे गए। वे कश्मीर का क्यों ज़िक्र करते जब कि उनकी मान्यता के लिए वहां अवकाश न था वे इतने विशाल हृदय भी न थे कि बौद्ध धर्म का केन्द्र होने पर भी कश्मीर का ज़िक्र करते। उस ज़माने में कश्मीर का ज़िक्र करना किसी हद तक बौद्ध धर्म का संरक्षण करने के बराबर था।

कश्मीर के इतिहास तथा संस्कृति के सम्बन्ध में विस्तृत वृत्तांत अन्य पुस्तकों में भी मिलते हैं फिलहाल इस विषय का यहीं समाप्त होना संगत है।

संदर्भ

1. Indo-Aryan Languages : Dr S. K. Chatterji.
2. Hindi Civilization : Dr R. K. Mukerji.
3. River Names in Rig Veda : M. A. Stein.
4. Vedas : F. Maxmuller.
5. The Rig Veda : Kaegi.
6. The Early History and Culture of Kashmiri.

7. Legends in Maha Bharta : Dr. S. A. Dange.
8. Maha Bharta Critical Edition : Bhandarkar Institute.
9. The Vishnu Puran : H. H. Wilson.
10. Encyclopaedia of Indian Culture : R. N. Saletore.
11. Bhagvat Purana : Naval Kishore.
12. History of Sanskrit Literature.
13. Kalhana's Raj Tarangini : R. S. Pandit and Stein.
14. History and Culture of Indian People : Bhartia Vidheya Bhavan, Bombay.
15. Cultural Heritage of India (Literature) : Dr. S. K. Chatterji.

□ अनु० अर्जुनदेव मजबूर

पुंछ के सूफ़ी—साईं फ़क्करदीन

□ प्रो० देवेन्द्र सिंह

जम्मू-कश्मीर राज्य के पंजाबी साहित्येतिहास में अनेक महान सर्जकों का उल्लेख किया जा सकता है जिनमें से सूफ़ी परम्परा के अंतिम और समकालीन हस्ताक्षर साईं फक्करदीन का जिक्र बहुत महत्वपूर्ण है। यदि पंजाबी की समूची सूफ़ी काव्य-परम्परा पर एक विहंगम दृष्टि डालें तो अनुभव होता है कि शेख़ फ़रीदुद्दीन गंजशकर पंजाबी साहित्य के आदि-काल के प्रारम्भिक योगदानियों में से एक हैं। उनका समय (1173—1265 ई०) निश्चित है। शेख़ फ़रीद के एक सौ अठारह दोहे और चार शब्द श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में संकलित हैं। ये पंजाबी साहित्य की महत्वपूर्ण थाती हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि पंजाबी साहित्य का आरम्भ, मुख्यत:, सूफ़ी कवियों की छत्र-छाया में हुआ। उत्तरवर्ती सूफ़ी कवियों ने अपने पूर्ववर्तियों द्वारा रखी गयी नींव पर पंजाबी-साहित्य के भवन का निर्माण करने में विशेष भूमिका निभाई। यद्यपि पंजाबी साहित्य की काव्य-परम्पराओं में, नाथ-सिद्ध-काव्य-परम्परा, भक्ति-काव्य-परम्परा, गुरमत काव्य-परम्परा और वीररस काव्य-परम्परा का भी विशेष महत्व है, तथापि पंजाबी सूफ़ी काव्य-परम्परा, अपने आध्यात्मिक पक्ष के बावजूद, बहुत लोकप्रिय दिखाई पड़ती है। इसका मुख्य कारण है – सूफ़ी कवियों का जनता से जुड़ कर काव्य-सर्जन करना।

शेख़ फ़रीद के पश्चात्, शाह हुसैन और सुल्तान बाहू (गुरु नानक काल), बुल्ले शाह, वजीद आदि (वारिस-काल), हाशम (रणजीत सिंह-काल), गुलाम फ़रीद। अंग्रेजी राज्य का प्रारम्भिक काल), प्रमुख सूफ़ी कवि हुए हैं, परन्तु बुल्लेशाह को सूफ़ी कविता-परम्परा में सिरमौर माना जाता है। यह परम्परा वर्तमान युग में भी प्रवहमान तथा जीवन्त होने के कारण महत्वपूर्ण है। पंजाबी की आध्यात्मिक काव्य-परिपाटियों में यह गौरव इसी काव्य-परम्परा को प्राप्त है...और यहां तक कि धनी राम 'चात्रिक', मोहन सिंह 'दीवाना', डॉ० दीवान सिंह, प्रो० मोहन सिंह प्रभृति, आधुनिकयुगीन कवियों ने भी अपने-अपने काव्य-सर्जन में, सूफ़ी विचारधारा का सदुपयोग किया है।

जम्मू-कश्मीर राज्य के कवि साईं फक्करदीन (मृत्यु—24 मार्च, 1987) इसी परम्परा के अंतर्गत आते हैं। पुंछ से जुड़े साईं जी का अपने सम्बन्ध में कथन है—

ये—याद रक्खो पुणछ वतन साडा,
मेंडर विच वसदे, गुज्जर ज़ात दे हां।
पठानातीर मसकीन दा पिंड भाई,
असल गुज्जर कौमी गुजरात दे हां।

○

मीम—मुलक नूरी, जिला पुणछ मेरा,
मेंडर वतन ते ख़ास तहिसील उत्थे।
पठानातीर फकीर दा पिंड पहिला,
सलवा डाकखाना दोए, मील मेरा।

स्पष्ट है कि साईं जी के पूर्वज गुजरात से पुंछ जिले की मेंडर तहसील के अन्तर्गत पठानातीर नामक ग्राम में आ बसे थे। साईं जी की प्रथम पुस्तक 'मद्दह रमूज़-उल-गंज' के मुख-पृष्ठ पर उनका पूरा पता इस प्रकार प्रकाशित है—मौजा पठानातीर, तहिसील मेंडर, डाकखाना सलवाह, जिला पुंछ। यह पुस्तक पाकिस्तान से प्रकाशित हुई। जीवन के लगभग पैंतीस वर्ष पठानातीर में गुज़ारने के अनन्तर, दूसरी बीवी की मृत्यु हो जाने पर, वे फ़कीरी वेश में, उक्त ग्राम त्याग कर, पंजाब और कश्मीर के अटन-हेतु निकल पड़े। अन्ततोगत्वा, वे ग्राम देगवार में आ बसे—

अलिफ़—अज्ज मैं पुणछ तहिसील हवेली,
पिण्ड खास दिगवार वेखो ।
पक्का डाकखाना शहिर पुणछ अंदर,
दोइ मील उत्थों झुग्गी पार देखो।

पुंछ जिला अन्तर्गत दो दिगवारों का जिक्र होता है—दिगवार तेड़वाँ और दिगवार मलदिआला। उनका सम्बन्ध दिगवार मलदिआला से है। इस ग्राम की प्रसिद्धि मुख्यत: उन्हीं से है।

साईं फक्करदीन पांच वक्तों के नमाजी और चिश्ती सम्प्रदाय से सम्बन्धित थे। पंजाबी के प्रथम सूफ़ी कवि शेख़ फ़रीद भी चिश्ती सम्प्रदाय से सम्बन्धित थे। इस नाते, साईं फक्करदीन, शेख फ़रीद के संदर्भ में विचारणीय हैं।

यद्यपि साईं हमारे समकालीन रहे हैं, तथापि उनकी जन्म-तिथि के सम्बन्ध में बहुत विश्वास के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता। इस सम्बन्ध में कोई अंत:साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। मृत्यु के समय उनकी आयु को देखते हुए कहा जा सकता है कि वे उन्नीसवीं सदी के अंत में उत्पन्न होकर 24 अगस्त 1987 को अल्लाह को प्यारे हुए। उनसे हुई मुलाकातों और श्रद्धालुओं की मान्यता के आधार पर प्राय: यही अवधारणा उपयुक्त प्रतीत होती है। उनकी चार शादियों का हवाला मिलता है। तीसरी शादी बीबी नासर बी से सन् 1952-53 में हुई थी। उस समय बीबी नासर बी के पहले विवाह से दो पुत्र—मौलवी सैद मुहम्मद और मौलवी तुल्ला—थे। ये दोनों आज भी दिगवार गांव के निवासी हैं। नासर बी के

देहावसान के पश्चात् साईं जी ने चौथी शादी बीबी अहमद बी से की जिन्होंने अन्तिम अवस्था में उनका पूरी तरह साथ दिया। तीसरी शादी से साईं जी के घर बीबी शकीना का जन्म हुआ—

होई इक लड़की तैनूं उमर सारी,
पिच्छे कौन हरूद पहुंचावणे नूं।

साईं जी की रचनाओं में, चचेरे भाइयों से ज़मीन-जायदाद के झगड़ों का वर्णन भी मिलता है, परंतु यह वर्णन प्रत्यक्ष रूप में न होकर कमर शाहवान और रज़िया बेग़म की प्रेम-गाथा में परोक्ष रूप में उपलब्ध है :

साडे नाल अदावत रक्खण,
चाचे जाद मूंह आले।

○

जिऊं कर फ़क्करदीन संताइया
चाचे ज़ादिआं भाइआं।

साईं जी के काव्य से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि बचपन ही से उनकी प्रवृत्ति अल्लाह की बंदगी और फ़कीरी की ओर थी। एक दास्तान में उनका स्वकथन उपलब्ध है कि उन्हें नूरी जलवे का दीदार हुआ था जिसके उपरान्त वे अचेत हो गये थे। चेतना लौटने पर उन्होंने घर-बार त्याग, फ़कीरी बाना धारण किया और पंजाब की राह ली। उनके जीवन की यह घटना मौलाना जमालउद्दीन से मिलती है :

अचनचेती रात सिआही,
नजर पिआ चमकारा।

○

अवल मझिआं चारन वाला,
गुज्जर कौम खटाना।
जिस दम नूर आइआ विचसीने,
होइआ वली रब्बा ना।

साईं जी के पीर, सैय्यद फ़ैज़ रसान थे। वे मिलनगाम (काश्मीर) के निवासी थे। साईं जी के जीवन में जादुई परिवर्तन लाने वाले वही थे। तदुपरान्त साईं पुंछ आ बसे, जहां लोगों में उनकी मान्यता बढ़ गयी। उनकी लोकप्रियता ही के कारण अब भी हर साल बारह रबी-उल-अव्वल के दिन सालाना उर्स लगता है। सप्ताह-भर चलने वाले उक्त उर्स में हिन्दू, सिख और मुसलमान श्रद्धालु हजारों की संख्या में भाग लेते हैं। इस अवसर पर साईं जी की रचनाओं का पाठ बहुत ही आनन्दपूर्वक किया जाता है। साईं जी के व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि वे हिकमत भी जानते थे और तावीज, जादू, टोटके आदि में भी विश्वास रखते थे। रज़िया बेगम के, ज़बरदस्ती निकाह के समय बीमार हो जाने वाले प्रसंग में साईं जी ने हिकमत के कुछ खूबसूरत नुस्खे भी अंकित किये हैं।

उन्होंने अपनी एक रचना में 'चार यारों' का वर्णन किया है जो उनके सुन्नी होने का

प्रमाण है। इसके साथ ही वे बड़े फ़ख्र से अपने गुज्जर होने का दावा भी करते हैं :

गफ़लत अन्दर गुज्जर शाइर

O

फ़क्करदीन बडानिआ गुज्जरा

O

बताया जाता है कि 1965-66 में आप हज के लिए मक्का-शरीफ़ भी गये थे। वैसे, हज के लिए तृष्णा उनकी शायरी में प्राय: अभिव्यक्त हुई है और यह अभिव्यक्ति, निस्सन्देह बहुत ही भावपूर्ण बन पड़ी है।

कल्चरल अकादमी जम्मू ने, पंजाबी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति के सेवार्थ उन्हें 14 फरवरी, 197+ को सम्मानित किया था। इस अवसर पर राज्य के तत्कालीन मुख्य-मंत्री सैय्यद मीर कासिम ने उन्हें एक पश्मीना शाल और छह सौ रुपये भेंट किये थे।

साईं जी यदा-कदा कुछ शे'र कहते थे और उनका यही शौक उनके महान ग्रंथों के प्रणयन का कारण बना। ये शे'र और दास्तानें इतनी लोकप्रिय हुईं कि आज भी उनका काव्य लोगों के जिह्वाग्र पर है। उनकी सरल-सहज साधारण लगने वाली अभिव्यक्तियां अनेक लोगों के लिए जीवन-पथ-प्रदर्शक सूफ़ी रहस्य हैं।

साईं जी के तीन ग्रंथों का विवरण उपलब्ध हैं :

(अ) 'मद्दह रमूज़-उल-गंज' (पाकिस्तान से प्रकाशित)

(आ) 'हिदायतनामा फ़क्करदीन' (पाकिस्तान ही से प्रकाशित और अब अप्राप्य) और

(इ) 'ज़िया-उल-क़मर' (19 1 में प्रकाशित)।

'मद्दह रमूज़-उल-गंज' ऐसी मसनवी है जिसमें, मूलत: पीरों के पीर हज़रत गौस अलसाकलीन की करामातों का वर्णन है। करामातों के वर्णन का आपका मुख्य उद्देश्य है— 'आधुनिक युग में इस प्रकार की शख्सीयत भूली-भटकी जनता के लिए रहनुमा बन सकती है।'

'मद्दह रमूज़-उल-गंज में, यद्यपि, पीरों के पीर हजरत गौस की करामातों का वर्णन है, तथापि पंजाबी काव्य-परम्परा के संदर्भ में इसे किस्सा-काव्य-परम्परा के अन्तर्गत रखना अधिक उपयुक्त है और इसे फ़ारसी मसनवी का रूपान्तरण कहना अपेक्षाकृत युक्तियुक्त है। इसी प्रकार 'ज़िया-उल-कमर' को 'किस्सा कमर शाहबान और रज़िया बेगम की संज्ञा से अभिहित करना उचित प्रतीत होता है। इन कृतियों को विशुद्ध सूफ़ी रचलाओं के रूप में तो ग्रहण नहीं किया जा सकता, परन्तु पंजाबी किस्सा-काव्य परम्परा की भांति, इन्हें इश्क-ए-मजाजी को इश्क-ए-हकीकी की रंगत देकर रची गई कृतियां मानना युक्तिसंगत प्रतीत होता है। साईं जी ने इन रचनाओं में इस्लामी दर्शन और सूफ़ी परम्पराओं को बहुत व्यापक रूप में प्रस्तुत किया है जिससे उनका इस्लामी रहस्य-साधना सम्बन्धी ज्ञान प्रमाणित होता है। 'मद्दह रमूज़-उल-गंज' के प्रारंभ में—

(अ) बारी ताला की सिफ़्त में,

(आ) पैगम्बर की शान में ना'त,

(इ) मदीने के मालिक की तरफ़ ख़त भेजना,

(ई) चार यारों की सिफ़्त

(उ) हज़रत अमाम हसन और अमाम हुसैन की सिफ़्त

(ऊ) हज़रत गौस आज़म कुत्तब रब्बानी की सिफ़्त

—आदि संदर्भ उनके इस्लामी दर्शन के समस्त पक्षों से सम्बन्धित ज्ञान के प्रमाण हैं। इसी प्रकार 'ज़िया-उल-कमर' के आरम्भ में—

(क) बारी ताला की सिफ़्त में,

(ख) हज़रत जनाब सरवर-इ-क़ायनात की सिफ़्त,

(ग] तारीफ़-ए-मुहम्मदी,

(घ) तारीफ़-ए-चार यार,

(ङ) हज़रत गौस आज़म कुत्तब रब्बानी की सिफ़्त,

(च) शजरा शरीफ़ हज़रत मूसा;

(छ) शजरा शरीफ़ बज़ुर्ग चार यार,

(ज) बारह अमाम

(झ) शजरा हज़रत मुइनुद्दीन अजमेरी,

(ञ) काज़ी मुजीब मालदुआत की दरगाह में दुआ

और (ट) जली कलम

—आदि में भी साईं जी अपने इस्लामी दर्शन और रहस्यवादी पक्ष को ही पुष्ट करते हैं।

इन रचनाओं को आधार बना कर, साईं जी के सूफी विचारों और दर्शन पर प्रकाश डाला जा सकता है।

सूफ़ियों के ईश्वर विषयक चिंतन में अनेकरूपता है। कट्टरपंथियों के अनुसार परमात्मा काल-निरपेक्ष स्थान-निरपेक्ष और संपूर्ण है। उसकी सिफ़्त भी अपरिवर्तनीय है। वह सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, इन्द्रिय-अनुभवातीत, प्रकाश और अंधकार की सत्तर हज़ार तहों में छिपा हुआ (जलवा ते महिमा) सृष्टि का रचयिता तथा अन्य अनेक विशेषताओं से युक्त है। मनुष्य एवं ईश्वर का सम्बन्ध निरंकुश स्वामी और दास का सम्बन्ध है। बारीताला सिफ़्त में साईं जी ने परमात्मा के स्वरूप और उसकी विशेषताओं का वर्णन किया है—

अल्लाह इक रहिसी बाकी फ़क्करदीन

○

फ़ईकूं थीं अमन-अमान कीता

○

बन्दे वास्ते रब्ब ऐलान कीता

○

ऐथे कैद ओथे शादमान कीता

○

अरबां जोड़ चीजां इन्सान कीता ('मद्ह रमूज-उल-गंज')

सुब्हान अल्लाह सुब्हान अल्लाह
अरश अज़ीम कीता रब्ब पैदा
अव्वल सब जहानों।
होर पैदाइश पिछों कीती
बाद खबर कुरानों। ('ज़िआ-उल-क़मर')

साईं जी सूफ़ियों के वह्दत सिद्धांत से यथेष्ठ प्रभावित हैं और वास्तविक सत्ता को एक मानते हुए उसके अतिरिक्त किसी भी अन्य सत्ता के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते। यह सत्ता परमात्मा है और दृश्यमान जगत उस परम सत्ता की अभिव्यक्ति है। इसी सिद्धान्त पर 'हमाओसत' अर्थात् सब कुछ वही है का सिद्धान्त आधारित है।

सूफी विचारधारा में नफ़्स और रूह का प्राथमिक स्थान है। नफ़्स को मारना और आत्म-ज्ञान प्राप्त करना मनुष्य का प्राथमिक कर्त्तव्य है। इसलिए सूफ़ी अनुभव में परमात्मा के बिना सब कुछ नश्वर है। स्वाभाविक ही है कि नफ़्स (काम-वासना) की कैद का अर्थ दुःख भोगना है और रूह की पहचान (आत्म-ज्ञान) शारीरिक विषय-वासनाओं की कैद से मुक्त होने पर ही सम्भव है। इसलिए मनुष्य को परमात्मा की भक्ति के लिए प्रेरित किया गया है। साईं जी ने संसार को नश्वर बताते हुए मानवों को श्रेष्ठ आचरण की प्रेरणा दी है।

दुनियां उप्पर चार दिहाड़े
शोखी ते वडिआई

○

उत्थे नेकिआं दा मिलसी नेक रुतबा
गल्ल साफ़ हदीस कुरान वाली

○

नीवीं नजर करके चल फ़क्करदीन।
उच्चा वेख न मौत विसार के ते

उनके काव्य में नसीहत/उपदेश/नैतिकता आदि का समावेश, इसीलिए स्वाभाविक है—

नेक अमाल कर फ़क्करदीना
आस नहीं अज्ज दम दी

○

छोड़ हिदायत फ़क्करदीना
कीती दा फल पाउणा

○

मतलब वेले लिफ-लिफ सिजदे
ख़ान, अमीर, सुआली

O

ऐ बन्दे ! कर अमल चंगेरा
विच दरबार खलोणा
काज़ी वांगू विच अदालत
नां शर्मिंदा होणा

इस प्रकार साईं जी एक नेक व्यक्ति को श्रेष्ठ जीवन-शैली-सत्यनिष्ठा-पवित्रता-अपनाने की शिक्षा देते हैं। सूफ़ी अनुभव के ऐसे पक्षों को उनके कृतित्व में उच्च स्थान प्राप्त हैं ; जो स्वाभाविक ही है।

साईं जी ने 'मद्दह रमूज़-उल-गंज' (जो ख़ाकी की प्रेम-गाथा है) और 'ज़िया-उल-कमर' (जो रज़िया वेगम और कमर शाहज़ान की प्रेम-गाथा है) में सूफ़ी मत के उच्चतर लक्ष्य 'इश्क' का सुन्दर वर्णन किया है। इस प्रकार उन्होंने इश्के मिजाज़ी में इश्के हक़ीक़ी का रंग घोलकर इन कृतियों को ईश्वरीय प्रेम से परिपूरित बना दिया है—

इश्क न सौखा फ़क्करदीना,
यार मिले मर-मर के।
इशक-नदी च लक्खां डुब्बे,
पार गिआ कोई मर के।

O

मूं रखिआ मैं बुड्ढी पीर वाला,
मख़फ़ी रमज़ है होर जहान उत्ते।
ज़ाहिर होर ते बातनी होर गल्लां,
रमज़ समझ साड्डे समझाण उत्ते।

उनकी रचनाओं में सूफ़ी मत के उद्देश्यों, सूफ़ी अनुभव के भिन्न-भिन्न पड़ावों और मानवोचित कर्त्तव्यों से सम्बन्धित ऐसे अनेक सुंदर उदाहरण उपलब्ध हैं जो मनुष्य को अगले जहान में जाने से पूर्व नेक कमाई करने की प्रेरणा देते हैं—

सहुरे तरफ़ चली तूं लड़की
की कुझ दाज लिआई।

O

दाज न होइआ मार मुकाई,
खावंद पकड़ कटारी।

O

दाज बणाउंदी क्यों अज्ज रोंदी,
चल अग्गे सुख बहिंदी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि साईं फ़क्करदीन, बीसवीं सदी में बाबा फ़रीद की चलाई हुई परम्परा को जीवंत और प्रवहमान रखते हैं और वे शाह हुसैन, सुलतान बाहू, वजीद, बुल्लेशाह, गुलाम फ़रीद के विचारों को पुनरुजीवित करते हैं। वे मुख्यत: शरीअत-उन्मुखी सच्चे मुसलमान हैं। वे सच्चा और पवित्र जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा देते हुए सदाचार और नैतिकता का पाठ पढ़ाते हैं। इस प्रकार, वे, नश्वर प्रेम में अविनश्वर प्रेम और गहन आध्यात्मिक अनुभूतियों को अभिव्यक्त कर. मनुष्य को ईश्वर और उसकी भक्ति से जोड़ते हैं ; जभी तो वे अपने रचना-कर्म के प्रति सचेत रहते हुए कहते हैं—

शे'र मेरे दो कदर बाअजे,
लोक पसन्द न करदे ।
बाअजे इशक मुहब्बत वाले,
सर चशमां पर धरदे ।

अनु०—**निर्मल 'विनोद'**

रचनाकारों से निवेदन

- शीराज़ा में कला, संस्कृति एवं साहित्य से जुड़ी आप की मौलिक, अप्रकाशित रचनाओं का स्वागत है।
- हाशिया छोड़ कर स्पष्ट लिखी हुई या टंकित रचना भेजें। कार्बन कापी नहीं। रचना के अन्त में अपना नाम तथा पूरा पता अवश्य दें।
- समीक्षा के लिए कृति की कृपया दो प्रतियां भेजें।
- अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखक की अनुमति संलग्न करना अनिवार्य है।
- रचनाओं की स्वीकृति तथा नियमानुसार पारिश्रमिक यथासम्भव शीघ्र भेज दिया जाता है। इस विषय में किन्हीं अनिवार्य परिस्थितियों के कारण होने वाले विलम्ब के लिए अवांछित पत्र व्यवहार न करें।
- केवल वहीं रचनाएं लौटायी जा सकेंगी जिनके साथ टिकट लगा लिफाफा संलग्न होगा।

कृति और आकलन

पानी में आग जले

□ निर्मल 'विनोद'

कविता के अराजकता-भरे दौर में, जबकि कविता के नाम पर ऊल-जलूल अभिव्यक्तियों के सिक्के को ठसके से चलाया जा रहा है, यदि प्रचलित फैशन की अन्धी दौड़ से कुछ अलग तरह के काव्य-प्रयास से साक्षात्कार हो जाये तो किंचित आश्वस्तिकर सुख की अनुभूति होना स्वाभाविक है। 'पानी में आग जले' को भी एक ऐसा ही काव्य-प्रयास कहा जा सकता है। डॉ० टेकचन्द शास्त्री के इस संग्रह में संगृहीत बत्तीस कविताएं वस्तुतः, समसामयिक जीवन-परिस्थितियों में जीवनयापन कर रहे व्यक्ति-मन की सहज-सरल-निश्छल प्रतिक्रियाएं हैं, जिनमें संगत-असंगत, हास्य-रुदन, रीझना-खीझना आदि कितना कुछ है।

संग्रह की प्रथम कविता का शीर्षक है, 'पद्मुक्त' (पृ० 11) इस कविता में अवकाश प्राप्त ऐसे अधिकारी की हीनता-ग्रंथी की ओर संकेत है जो अपने ही 'ईगो' से आक्रांत है। उसमें वस्तु-स्थिति का सामना कर पाने योग्य साहस का अभाव तो झलकता ही है, समाज से जुड़ाव का अभाव भी प्रकट होता है। 'पदमुक्त आदमी के व्यक्तित्व को बौना' मानने वाला अधिकारी 'तन्हा-तन्हा, निपट अकेला और अजनबी-सा दिखने लगे' तो आश्चर्य कैसा ? कविता, जहां, पद-यश गरिमा की 'क्षणभंगुरता' को पुनरुद्घाटित करती है, वहीं, यह ध्वनि भी प्रकटाती है कि सेवा-मुक्त होने पूर्व यदि व्यक्ति समाजोपयोगी कार्यों में लगने अर्थात् किसी भी प्रकार की समाज-सेवा का मन बना ले तो इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न ही न हो।

'पानी में आग जले' की यथार्थपरक कविताएं, सम्वेदना को मात्र छू कर ही नहीं रह जातीं, प्रभावित भी करती हैं। ये कविताएं सामाजिकता तथा समाजधर्मिता के प्रति आग्रह की कविताएं हैं। इस क्रम में 'अखबार', (पृ० 15), पानी में आग जले' (पृ० 13), 'आदमी की मौत' (पृ० 18), 'वन्दी हो तुम' (पृ० 16), 'कविवर ऐसा गीत सुनाओ (पृ० 22),

'सांप' (पृ० 24), 'एक प्रश्न' (पृ० 27) 'धरती से आतंक मिटाओ' (पृ० 32), 'आओ मधुवन को महकाएं' (पृ० 40) आदि कविताओं को रखा जा सकता है।

'अखबार' समकालीन यथार्थ का दस्तावेज़ है। कवि के लिये पीड़ा का विषय यह है कि बलात्कार, हत्या, स्कूल जाते बच्चों का अपहरण, बैंक डकैती, बम धमाके की खबरों से पटा---

"निराशा के बादल गहराता
नित आता अखबार
कुछ भी तो नया नहीं लाता।' (पृ० 15)

कवि को एहसास है कि विविध रूप-आयामी रूढ़ियों की सलाखों में 'बेबस पंछी की नाईं बैठे' अस्मिता-बोध-विहीन सामाजिक प्राणी ने कतिपय स्वार्थों की पूर्ति के लिये अपने मस्तिष्क एवं जिह्वा तथा भावनाओं और उमंगों को 'यन्त्र में आबद्ध' हो जाने दिया है। 'तुच्छ स्वार्थ से ऊपर उठकर' अपने अस्तित्व की महानता का साक्षात्कार' कर पाने में असमर्थ, अस्मिता-बोध-विहीन, व्यक्ति की पराधीन जिह्वा का किसी अन्य के इंगित पर इतराते हुए नाच उठना, उसके लिये तथाकथित उपलब्धि ही तो है; कवि ने इस वस्तु-सत्य को 'बन्दी हो तुम' (पृ० 16) में बखूबी पकड़ा है।

यह दौर मानवीय मूल्यों के ह्रास का दौर है। सर्वत्र हिंसा का बोल-बाला है। आदमी की आदिम हिंसक प्रवृत्ति आज विकृति की सीमा पार कर गई लगती है। मानवीय मूल्यों पर पशुता ने, मानो, प्रश्न-चिन्ह लगा दिया है। मक्कारी; भीरुता और अमंगल के, सियार सरीखे प्रतीक का 'शहर में सियार, (पृ० 17) कविता में साभिप्रेत प्रयोग कवि की लेखनी के सधे होने का प्रमाण है। शहर में ऊधम मचाते सियार से आतंकित नागरिक पलायन करने पर विवश हैं, जबकि सियार पूर्णतया निःशंक है। कविता में यह स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है कि आदमी की मौत का कारण आदमी ही है। इसके बरक्स 'आदमी की मौत' (पृ० 18) कविता में कुक्करमुत्ते की तरह हर जगह उगती मौत को केन्द्र में रखे कवि का व्यंग्यपरक सुझाव है---

"चुपचाप मौन बैठे रहो
करके खिड़कियां द्वार
और वातायन बंद" (पृ० 18)

और इसका कारण है—

"बौखला गया है आज आदमी
बन चुका है बावला
खेल रहा है अपने ही खून से
होली सरे-आम" (पृ० 18)

कविता की अन्तिम पंक्तियों में व्यंग्य अपने चरम पर है---

"कुत्ते भाग रहे हैं
शहर से जंगल की ओर

भय है उन्हें
कहीं आदमी की मौत न मारे जाएं।" (पृ० 18)

कैसी विडम्बना है कि निरीह आदमी सड़क पर मर जाता है किन्तु अन्य जनमूकदर्शक बने देखते रह जाते हैं। इस दृष्टि से 'एक प्रश्न' (पृ० 27) पाठक को कचोटने में सक्षम है। 'दावा नई जन्नत बसाने का' (पृ० 49) और 'प्रतिबिंब से' (पृ० 50) वस्तुतः आदमी की दानवी प्रवृत्तियों के अंकन द्वारा—आत्म-मंथन तथा आत्म-शोधन के लिये प्रेरित करने वाली कविताएं हैं।

स्थिति विस्फोटक भी है, त्रासद भी और पीड़ादायक भी। जन-जीवन बुझा-बुझा, सहमा-सहमा लगता है—एक ठण्डे सन्नाटे से आवेष्टित, जबकि घनीभूत होती चली जाती पीड़ा से मुक्ति दिखाई नहीं पड़ती —

"बर्फ की नाईं
जमने लगी है पीड़ा
पर्वत-शिखरों पर
परत-दर-परत" (पृ० 21)

और ऐसे में मुक्तिकामी मन मधुमास के लिये गुहार न लगाये तो क्या करे?

"झरने लगे फिर
पाषाणों के वक्ष-स्थल से
संत्रास के निर्झर
नन्दन-कानन रह-रह पुकारें
रूठे मधुमास को" (पृ० 21)

मधुमास को बुलाने की बात 'कविवर ऐसा गीत सुनाओ' (पृ० 2) में भी है। यद्यपि इस उद्‌बोधनात्मक कविता में उपदेश का स्वर मुखर है, तथापि, कवि का मधुमास-प्रेम लक्षित होता ही है और यह कोई कम महत्त्वपूर्ण नहीं। जीवन में आस्था तथा जिजीविषा कवि को यथार्थ की कटु-तिक्त कुहेलिका में भटकने से बचाती है। दूसरे शब्दों में, यह साध है—जीवन को निर्भय, सुखी, सम्पन्न, सुन्दर, ध्येय-निष्ठ, कर्त्तव्य-परायण और सार्थक बनाने की। यह कामना है—राम-राज्य की, जिसके लिए तुलसी बाबा का यह कथन प्रमाण है—

दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम-राज नहिं काहुहि व्यापा॥"

ऐसा नहीं कि कवि को निराशा नही घेरती। 'धरा जब त्रस्त सारी' (पृ० 36) कविता की तान तो टूटती ही निराशापरक कथन पर है—

"जले हैं नीड़ विहगों के
शरण कोई कहां पाए
धरा जब त्रस्त सारी हो
तो फिर मधुमास क्या आए?" (पृ० 36)

'बसन्त' (पृ० 39) कविता में वसन्त का पारम्परिक उल्लास नदारद है जो बढ़ते शहरीकरण तथा मशीनीकरण की देन है।

परन्तु कुछ स्थलों पर उभरा असन्तोष तथा निराशा का यह स्वर कवि का मूल स्वर नहीं है। इन कविताओं के वातावरण से अभिव्यक्त होती बेचैनी, वस्तुतः, जीवन के प्रति ललक की ही देन है। इस का प्रमाण, 'आओ मधुवन महकाएं (पृ० 40), 'तुम अपवाद नहीं हो' (पृ० 42) तथा अन्य अनेक कविताएं हैं। कवि कटु यथार्थ के आगे घुटने न टेक, कुछ कर गुज़रने की भावना का प्रक्षेपण करता दिखाई पड़ता है। वह निस्पंद-प्राय पड़े, त्रस्त जीवन को जड़ बना देने वाली परिस्थितियों को बदलने का आह्वान करता है। वह एक-एक तिनका जोड़-बीन कर फिर से नीड़ का निर्माण करने, होंठों के खोये हास को पुनः लौटाने और संगीत की लहरियों से दिग्-दिगन्त को जीवन्त बनाने की चेतना जगाते हुए, आदर्श जीवन-स्थितियों की कामना करता है। वह—

'बरसें बादल समय-समय पर
शस्य श्यामला फसलें झूमें' (पृ० 41)

जैसी पंक्तियों के माध्यम से "यन्तु नदयो, वर्षन्तु पर्जन्या......" यह मंगल-कामना करने वाले ऋषियों की परम्परा से जुड़ जाता है। कवि की मान्यता है कि सत्य को जीवन का मूल्य-मान मानने वाले हज़रत ईसा सरीखे महात्माओं को सलीब उठाने तथा यातनाएं भोगने पर विवश होना पड़ता है, परन्तु विपदाएं झेलने पर भी, मुस्काने के उनके जीवनादर्श को स्मरण रखना ही श्रेयस्कर है। कवि की स्पष्ट घोषणा है—

"युद्ध अपना
स्वयं लड़ना पड़ेगा
चलना पड़ेगा
बहुत दूर तक अकेले" (पृ० 42)

इस सन्दर्भ में रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'एकला चालो रे' का स्मरण स्वतः हो आता है।

युद्ध-भय ने मानव को संत्रस्त कर रखा है। 'वृत्रासुर' (पृ० 56) जीवन में आस्था तथा मानवता की अजेयता में विश्वास जगाने वाली कविता है।

'न्याय' (पृ० 54) कविता में समसामयिक न्याय-व्यवस्था पर कटाक्ष किया गया है। अत्यधिक लम्बी खिंचती न्याय-प्रक्रिया की परिणति की ओर कवि का किंचित अतिशयोक्ति-समन्वित संकेत द्रष्टव्य है—

"न्याय मिलने तक की
लम्बी प्रतीक्षा में
यदि दोनों पक्ष
जीवित रहें तो
यह सर्वथा भूल चुके होते हैं
कि झगड़े का कारण क्या था (पृ० 54)

कवि व्यंग्य की कुनैन को हास्य की चाशनी से आवेष्टित कर परोसने में सिद्धहस्त है।

एक उदाहरण इस प्रकार है—

"माखन कोमलता का प्रतीक
मधुर पौष्टिक पदार्थ है
घर का हो, या चोरी का
खाने में कोई हर्ज नहीं
क्योंकि माखन चोर कन्हैया
घर का कम और चोरी का
अधिक खाते थे
बार-बार यशोदा से थे बोलते झूठ
और कहते थे यही
"मैया मोरी मैं नहीं माखन खायो।"
समय बदला—
द्वापर से कलियुग आया
मान्यताएं बदलीं
और मनुष्य ने
माखन खाना छोड़
माखन लगाने का चलन अपनाया।" (पृ० 35)

बदलती मान्यताओं और परिवर्तित होते चले जा रहे मूल्यों की बात उठाते हुए कवि ने, यथार्थ पर आधारित, तथ्यपरक दृष्टि का परिचय दिया है। तथ्यपरक इस अर्थ में कि कवि अनावश्यक-प्राय रूढ़ियों के अन्ध-मोह-पाश से मुक्त दिखाई पड़ता है—और इसे, शास्त्री जी के कवि की उपलब्धि माना जा सकता है। 'एकलव्य' (पृ० 19) जैसी कविता पढ़ कर हरिशंकर परसाई के व्यंग्य की महीनमार का ध्यान हो आता है और यह अकारण नहीं। 'पितृ-पक्ष' (पृ० 46) और 'अन्तर्द्वन्द्व' (पृ० 51) तर्क-संगत न लगने वाले धरातल पर खड़े व्यक्ति के लड़खड़ाते पारम्परिक विश्वास का अंकन है। कवि अनुभव-समृद्ध है, इसलिए उसके व्यंग्य से कोई क्षेत्र अछूता नहीं लगता। 'लेबल' (55), उपभोक्तावाद और बाजार-भाव को बढ़ावा देती लेबल-संस्कृति की विसंगति को उजागर करती कविता है।

पर्यावरण-सुरक्षा कवि का प्रिय विषय है। इस सन्दर्भ में यहां एक बात स्पष्ट कर देना अनिवार्य प्रतीत होता है और वह यह कि पर्यावरण सम्बन्धी कविताएं किसी सरकारी प्रचार-तंत्र के आग्रह का परिणाम न होकर अन्त:करण की सहज प्रतिक्रियाएं हैं। ऐसी कविताओं के दो स्तर, पाठक का ध्यान बहुत स्पष्ट रूप से आकर्षित करते हैं। प्रथम स्तर, बाह्य पर्यावरण से सम्बन्धित है। इस स्तर पर प्रकृति के अन्धा-धुन्ध किये जा रहे शोषण के विरुद्ध असहमति का स्वर तो उभरा ही है, निसर्ग को सुरक्षित रखे जाने की चिन्ता तथा मानसिक वेदना भी प्रकट हुई है। कवि उजाड़ जंगलों को फिर से लगाने तथा उनके संवर्द्धन पर बल देता है। वह जहां वृक्षारोपण के लिए प्रेरित करता दिखाई देता है, वहीं अन्यान्य जीव-जन्तुओं—लुप्त-प्राय होती चली जा रही उनकी प्रजातियों की वंश-वृद्धि के प्रति उत्तर-

दायित्व भरा बोध भी जगाता है। कहना न होगा कि ऐसी कविताओं में एक बड़ा खतरा, कविता के सीधी-सपाट बयानबाजी होकर रह जाने का खतरा है। यह खतरा वाकई बहुत अहम है और कवि यथासम्भव इस खतरे से बचने के लिए संघर्ष करता दिखाई पड़ता है। वह काफी हद्द तक सजग लगता है। 'नन्दन वन पुकारते' (पृ० 21) जैसी कविता में कवि ने अपनी बात बहुत ही संयत तथा कलात्मक ढंग से कही है। इस दृष्टि से 'सांप' (पृ० 24) और 'तुम बिन कौन सुनेगा (पृ० 52) कविताएं भी महत्त्वपूर्ण बन पड़ी हैं। 'सांप' कविता में व्यंग्य का स्तर अत्यन्त उन्नत है। सांप मानव-समाज की अतियों को निकट से जांचने-परखने के बाद भयभीत हो उठता है। वह यह सोच कर कि 'किसी पर्वत की कन्दरा में/ अवश्य मिलेगी ठण्डक' पहाड़ की ओर बगटुट भाग लेता है, परन्तु उसे मानव के विनाशकारी स्वभाव और दुष्टता-भरे हाथों की करामात वहां भी अपना काम कर गई लगती है—

"और देखा—
सभी पर्वत नंगे
हो चुके है
बृहदाकार पेड़
धराशायी पड़े हैं
लुट चुकी है
वन्य सम्पदा
मशीनों की लपेट में आ
विशाल चट्टानें
टुकड़े-टुकड़े हो चुकी हैं।
बेबस सांप कहीं भी
सिर छुपाने की जगह न पा
पास बहती नदी में उतरा
ओर वहीं मर गया !" (पृ० 25-26)

'सांप' के, ऊपर, उद्धृत अंश में, त्राण पाने नदी में उतरे सांप के मरने में अन्तर्निहित व्यंग्यपरक अर्थ की खोज पाठक स्वयं करे और सिर धुने, कवि का यही उद्देश्य है। 'पेड़ों के धराशायी होने' और 'विशाल चट्टानों के टुकड़े-टुकड़े होने' जैसे ब्यौरों के क्रम में कवि कह सकता था कि नदी का प्रदूषण-ग्रस्त जल अत्यधिक विषैला हो चुका था, जो सांप के लिए घातक सिद्ध हुआ, परन्तु वह सरलीकरण न करते हुए पाठक की कल्पना-शक्ति पर भरोसा करना ही बेहतर समझता है। इससे अर्थ-गाम्भीर्य और प्रभावान्विति में वृद्धि हुई है। 'तुम बिन कौन सुनेगा' मिथकीय आधार पर टिकी कविता है। कविता का आरम्भिक अंश है—

"कालिया ने किया था कलुषित
द्वापर में कालिन्दी का जल
तो तुम सहसा कूद पड़े थे
बहती यमुना की धारा में

लक्ष्य तुम्हारा यमुना की
पावनता बचाना था
कन्दुक-क्रीड़ा तो
मात्र एक बहाना था" (पृ० 52)

कविता का शेष कथ्य प्रदूषण बढ़ाने और प्राकृतिक सम्पदा के विनाश से सम्बन्धित है। अन्तिम पंक्तियां हैं—

"रुका नहीं यह विष-प्रवाह तो
स्थावर-जंगम मर जाएंगे
आने वाले बच्चे भी तब
इस धरती से डर जाएंगे
तर्पण विष-मिश्रित होगा
पितर करेंगे हाहाकार
तुम बिन कौन सुनेगा
इस धरती की चीख-पुकार ?" (पृ० 53)

पर्यावरण-सम्बन्धी द्वितीय, किन्तु अत्यधिक महत्वपूर्ण स्तर मनुष्य के अन्तःकरण से सम्बन्धित है। 'प्रतिबिम्ब से' (पृ० 48), 'दावा नई जन्नत बसाने का' (पृ० 49), मान्यता' (पृ० 37), 'चुनाव-चिन्ह' (पृ० 33), 'एक प्रश्न' (पृ० 27) आदि कविताओं में मानसिक प्रदूषण की अभिव्यक्ति देखते बनती है।

संग्रह की किसी-किसी कविता में कवि की सीमाएं प्रभावान्विति के आड़े आये बिना नहीं रहती। जैसे, 'पानी में आग जले' (पृ० 13)। कविता पढ़ने के बाद लगता है कि सुचिन्तन के अभाव और शब्द-चयन में तनिक असंयम के कारण कविता वांछित प्रभाव नहीं छोड़ पाती। टपकती छत को निहारते फटे-हाल 'गृह-स्वामी' का 'अपनी नियति पर' विद्रूप-भरी हंसी हंसना तो समझ आता है, जबकि—

"हताश पति-पत्नी
नन्हे शिशु को
गोदी में उठाये
नीहारते करुणा भरी निगाहों से
करते विधि की
विडम्बना पर अट्टहास" (पृ० 14)

—कविता के इस अन्तिम अंश की अन्तिम पंक्ति की, 'करुणा भरी निगाहों से' से संगति नहीं बैठती। अपने झोंपड़े के बाढ़ की चपेट में आकर बह जाने के बाद, बे-घर हुए पति-पत्नी द्वारा, बरसात में भीगते बच्चे को करुणा भरी दृष्टि से देखना सम्भव है, परन्तु 'विधि की विडम्बना पर 'अट्टहास' समीचीन नहीं प्रतीत होता। सुधी पाठक 'अट्टहास' शब्द के उपयोग पर अटके बिना नहीं रह पाएंगे। वस्तुतः, विषम परिस्थिति-जनित ऐसी मनःस्थिति में 'अट्टहास' जंचता ही नहीं। विधि की विडम्बना पर अट्टहास तो मानसिक सन्तुलन खो देने की स्थिति में ही सम्भव लगता है। मानसिक आघात से, पति-पत्नी में से किसी एक का मानसिक सन्तुलन गड़बड़ा जाना शायद सम्भव हो भी, परन्तु दोनों का

अट्टहास करना पाठक के गले नहीं उतरता। कविता से ध्वनित होते करुण-भाव को यह शब्द क्षीण करता हैं। इसी कविता में –'निराशाओं के अवसाद का' जैसा वाक्य-खण्ड भी कविता के समग्र प्रभाव को खंडित करता लगता है; 'निराशाओं के' पद व्यर्थ हैं। शब्द-स्फीति या कहिये कि शब्दों की फिजूलखर्ची से कवि को बचना चाहिए, जबकि पानी में आग जले' के कवि की कुछ कविताएं, इसी बात को दृष्टिविगत कर दिए जाने से शैथिल्य की शिकार हुई हैं।

"पदमुक्त हुए
अभी—
एक वर्ष भी तो नहीं गुजरा
और मैं अपने ही शहर में
तन्हा-तन्हा
निपट अकेला
अजनबी-सा दिखने लगा हूं

○

हैं कितनी अस्थायी
कितनी क्षणभंगुर
सत्ता उच्च पद की" (पृ० 11)

संग्रह की प्रथम कविता 'पदमुक्त' के ऊपर उद्धृत, अंश पर ही ध्यान दें तो बात स्पष्ट हो जाती है। 'एक वर्ष भी' से पूर्व 'अभी' कहने की कोई आवश्यकता थी; ऐसे ही 'तन्हा-तन्हा' के साथ 'निपट अकेला' का कोई औचित्य नहीं, नहीं और फिर 'क्षण भंगुर' में स्थायित्व कहां? अत; 'अस्थायी' पद अनावश्यक है। शब्द-विचार के संदर्भ में, ध्यान, 'तुरत' 'नीहारता', 'बलबोते,' बेवस आदि चिन्त्य प्रयोगों पर अनायास अटकता है। शास्त्री जी भाषा के पंडित हैं, इसलिए भाषा-सौष्ठव/सौष्ठव शब्द की दृष्टि से इनका पाठक उनसे कुछ अधिक उपेक्षा करता है। वे तनिक अधिक सावधान रहते तो, संग्रह में, कुछ शब्दों पर डोगरी उच्चारण के प्रभाव तथा प्रूफ सम्बन्धी त्रुटियों का निराकरण हो सकता था। वैसे, यहीं, यह स्पष्ट कर देना युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि कवि ने भाषा के नए और प्रचलित मुहावरे को मुक्त-हृदय से अपनाया है; तो भी पुराने मुहावरे की थोड़ी-बहुत शेप है अवश्य। अस्तु!

'पानी में आग जले' की व्यंग्य-प्रधान कविताओं में तत्सम् शब्दों और मुहावरों के सुष्ठु वर्तन से व्यंग्य की धार तीक्ष्णतर हुई है। अलंकार-प्रयोग युक्ति-युक्त तथा प्रभावोत्पादक है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

अनुप्रास—'× × पीड़ा/पर्वत शिखरों पर/परत दर परत।'

पुनरुक्त प्रकाश— 'जानलेवा हिमानी हवा से
कांप-कांप जाता
सहमा-सहमा
बुझा-बुझा-सा
जन-जीवन।"

उपमा— "बर्फ की नाईं
जमने लगी है पीड़ा ।"
"मौत अब कुक्करमुत्ते की तरह
हर जगह उगने लगी है"

रूपक— "झरने लगे फिर
पाषाणों के वक्ष:स्थल से
संत्रास के निर्झर"

मानवीकरण— "नन्दन-कानन
रह-रह पुकारें
रूठे मधुमास को"

संग्रह की कविताएं दोनों प्रकार की हैं—छन्दोबद्ध भी और छन्द-मुक्त भी। छन्द का निर्वाह-अपवाद छोड़कर प्राय: ठीक ही है।

कवि ने वाद-मुक्त, किन्तु युगीन प्रभावों के प्रति संवेदनशील रहते हुए, उन्हें जहां तक वांछित समझा, सजगतापूर्वक ग्रहण किया है, यह उसकी विशेषता है।

लघु कलेवर के इस काव्य-संग्रह में ऐसा बहुत कुछ है, जो सुधी काव्य-रसिकों के लिए आनन्दप्रद हो सकता है। □

कृपया शुल्क भेजते समय ग्राहक संख्या का
उल्लेख अवश्य करें।

—संपादक

डुग्गर की स्थापत्य कला

□ प्रो० शिव निर्मोही

किसी भी देश, प्रदेश अथवा जाति की समृद्धि उसकी कलाओं के विकास को देख कर आंकी जाती है। डुग्गर की सांस्कृतिक समृद्धि की द्योतक भी डुग्गर की ललित कलाएं ही हैं। विभिन्न संस्कृतियों के संघर्ष के कारण इस प्रदेश की कलाओं की स्थिति में मार्मिक परिवर्तन आए हैं। ये परिवर्तन डुग्गर की कलाओं में प्रत्यक्ष देखे जा सकते हैं। कलाओं को कई वर्गों में विभाजित किया जा सकता है, यथा—स्थापत्य कला, मूर्ति कला, संगीत कला तथा काव्य कला आदि। पर ये भेद भी अन्तिम सत्य नहीं हैं। स्थापत्य कला, मूर्ति कला तथा चित्रकला स्थूल कलाएं हैं और संगीत तथा काव्य कला सूक्ष्म कलाएं । स्थूल कलाओं में प्रथम स्थान स्थापत्य कला का है।

स्थापत्य कला

डुग्गर की स्थापत्य कला को काल भेद की दृष्टि से पुरातत्ववेत्ता केदारनाथ शास्त्री ने तीन भागों में विभाजित किया है, यथा ;—

1. प्राक् मुस्लिम काल (12वीं शताब्दी से पूर्व)
2. मध्यकाल या मुस्लिम काल (12वीं से 17वीं शताब्दी के मध्य)।
3. सिक्ख डोगरा काल (17वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी के मध्य तक ।

प्राक् मुस्लिम काल

मुस्लिम आक्रान्ताओं से पूर्व डुग्गर में जो नगर बसे, महल बने और मन्दिर आदि निर्मित हुए उनके अवशेषों की परिगणना प्राक् मुस्लिम काल के अन्तर्गत की जाती है। प्राक् मुस्लिमकाल में जिन नगरों और महलों के अवशेष उपलब्ध हैं, उनमें अम्बारां, मांडा और मेंढर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। अम्बारां तथा मांडा में हड़प्पा युगीन अवशेष

उपलब्ध हुए हैं, ये अवशेष धरती के गर्भ से प्राप्त हुए हैं। इन अवशेषों में नरमुण्ड, मूर्तियों, खिलौनों आदि के अतिरिक्त मकानों के लिए प्रयुक्त होने वाली मिट्टी की ईंटें भी मिली हैं। डॉ० चार्लस फ्रेवरी ने इन अवशेषों का अध्ययन करके यह अनुमान लगाया था कि इस क्षेत्र में हिन्दू और यूनानी कला का मिश्रित रूप प्रचलित था। मेंढर कस्बे के निकट अवस्थित प्राचीन महलों की वास्तुकला पर अभी अध्ययन कार्य चल रहा है। लोक श्रुतियों में कहा जाता है कि इन महलों का निर्माण एक यूनानी सेनानायक मेंढर ने करवाया था। इन महलों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें लोक स्थापत्य कला का रूप अभिव्यंजित है।

प्राक् मुस्लिमकाल के प्रत्यक्ष प्रमाण बबौर, किर्मची, बिलावर आदि स्थानों में अवस्थित प्राचीन मन्दिर भी हैं। ये मन्दिर डुग्गर की समुन्नत स्थापत्य कला के अनुपम उदाहरण हैं। ये मन्दिर प्राय; आर्य शैली के हैं। इन मन्दिरों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये चबूतरे के ऊपर निर्मित हैं। इनमें मूर्तियों को स्थापित करने के लिए जो आलय बनाए गए हैं, उनके आगे खुला स्थान छोड़ा गया है। गर्भगृह जहां देवता की मूर्ति संस्थित है, उसकी छत ठोस वक्र, रेखात्मक तथा शिखर के समान है। ये शिखर ऊपर से छोटे होते गए हैं। सबसे ऊंचे स्थान पर आलय हैं और उसके ऊपर कलश तथा ध्वज दण्ड हैं। मन्दिर के चारों ओर प्रदक्षिणा-पथ हैं। इन मन्दिरों में बबौर के मन्दिर तक्षण-कला की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण हैं। बबौर में इस समय केवल पांच ही मन्दिरों के अवशेष उपलब्ध हैं। कहते हैं कि किसी समय यहां तेरह मन्दिर थे। उनमें अधिकांश अब पूर्ण रूपेण ध्वंस हो चुके हैं। अब केवल दो ही मन्दिर ऐसे बचे हैं जो अति जीर्णावस्था में देखे जा सकते हैं। इनमें एक देवी का मन्दिर है और दूसरा शिव मन्दिर है जिसे स्थानीय लोग काला देहरा मन्दिर नाम से भी अभिहित करते हैं।

बबौर में देवी का मन्दिर गांव के पूर्व में सड़क के निकट भग्नावस्था में अवस्थित है। इस मन्दिर के द्वार स्तम्भ पर मगर पर आरूढ़ लगभग एक मीटर ऊंची गंगा की प्रतिमा है जो डुग्गर की सर्वश्रेष्ठ मूर्तियों में परिगणित होती है। इस मन्दिर का क्षेत्रफल 12×8 मीटर है। गर्भ-गृह एक चौकोण कोठरी के रूप में है। मन्दिर की प्रत्येक भुजा लगभग $6\frac{1}{4}$ मीटर लम्बी है जो भारी शिला पट्टों से निर्मित है। मन्दिर की बाह्य दीवारों की शिलाओं को कुरेद कर उभारदार चित्र अंकित हैं देवगृह के चारों ओर छोटे-छोटे चक्रों में अंकित मूर्तियां तक्षण कला की अनुपम कृतियां हैं। इस मन्दिर के गर्भ-गृह को मूर्तियों और नक्काशी से सजाया गया है। इस मन्दिर के मुख्य द्वार पर एक शिलालेख भी है जिसकी लिपि प्रो० गौरी शंकर के मतानुसार शारदा है। वे इस शिला लेख को बारहवीं शताब्दी का मानते हैं।

बबौर में स्थित अन्य दूसरा उल्लेखनीय मन्दिर काला देहरा मन्दिर है। बबौर स्थित मन्दिरों में यह सबसे बड़ा मन्दिर है। इसका क्षेत्रफल $16 \times 6\frac{1}{2}$ मीटर के लगभग है। इसका मण्डप तथा प्रदक्षिणा पथ एकाश्म पत्थरों के खम्भों पर आश्रित है। इन मन्दिरों के निर्माण का समय दसवीं से बारहवीं शताब्दी तक आंका गया है। इस अवधि में बबौर के तीन राजाओं का उल्लेख राजतरंगिणी में मिलता है जिनके नाम क्रमश: कीर्तिधर, वज्रधर तथा उमा धर है। अनुमान है कि इन्हीं राजाओं के समय में इन मन्दिरों का निर्माण हुआ होगा।

स्थापत्य कला का द्वितीय नमूना बिलावर में अवस्थित बिल्केश्वर महादेव का मन्दिर है जिसे हरिहर मन्दिर के नाम से भी अभिहित किया जाता है। इस मन्दिर की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस पर प्राक् मुस्लिम मन्दिरों का प्रभाव बहुत ही कम है। यह मन्दिर नागर शैली का शिखर मन्दिर है। इस मन्दिर के अष्टकोण गर्भगृह के ऊपर अति सुन्दर शिखर है जिस पर उभरी नक्काशी का काम हुआ है। यह शिखर गोल है। मन्दिर की भीतरी भित्तिकाओं की नक्काशी तक्षणकला की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। मन्दिर के भीतर ताकचे बने हैं और गर्भगृह की भीतरी चोटी पर पूर्ण विकसित कमल का फूल है। इसके शिखर उभरवां अकेरी के अलंकरणों की भव्य सजावट देखने योग्य है। इस मन्दिर का शिखर थोड़ी-थोड़ी वक्रता लेता है। मूल और चोटी पर शिखर की मोटाई में बहुत कम अन्तर है। इस मन्दिर की मूर्तियां काले पत्थर की हैं जो सम्भवत: बनी नामक स्थान से लाई गई हैं। इस मन्दिर का निर्माण अनुमानत: ग्यारहवीं शताब्दी में हुआ है और निर्माता के रूप में आनन्दराज और कलश स्थानीय राजाओं का नाम लिया जाता है जिनका उल्लेख ऐतिहासिक ग्रन्थों में उपलब्ध है। थड़ा कलयाल का शिव मन्दिर वास्तुकला की दृष्टि से हरिहर मन्दिर की ही अनुकृति लगता है। इस मन्दिर के भीतर शिव पार्वती की आदम कद मूर्तियां प्रतिष्ठित हैं। ये युग्म मूर्तियां लोक-कला का अनुपम नमूना है। इतिहासकारों के मतानुसार इन मन्दिरों का निर्माण सौमन्तकों ने ग्यारहवीं शताब्दी में किया है।

स्थापत्य कला की दृष्टि से किरमची में स्थित पांच मंदिरों का समूह उल्लेखनीय है। ये मन्दिर वीरू नदी की उप नदी के तट पर त्रेट नामक स्थान पर अवस्थित हैं। ये मन्दिर भी नागर शैली के शिखर मन्दिर हैं। वास्तुकला की दृष्टि से ये मन्दिर बबौर के मन्दिरों से कुछ भिन्न हैं। इन मन्दिरों के शिखर बेलन-आकार के दिखाई देते हैं जबकि अन्य मन्दिरों के शिखर सीढ़ी-नुमा आकार के हैं। किरमची के मन्दिरों की देव मूर्तियां श्वेत रंग के क्वाटर्ज नामक पत्थर की बनी हुई हैं। इनमें अधिकांश मूर्तियां शिव तथा गणेश से सम्बन्धित हैं। शिव की त्रिमूर्ति तक्षण-कला की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है। जो इतिहासकारों का मत है।

मध्यकाल या मुस्लिम काल

मध्यकाल में जो महल, दुर्ग तथा देव गृह बने उनमें से अधिकांश पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मुस्लिम वास्तुकला का प्रभाव दिखाई देता है। मुस्लिम कला से प्रभावित डुग्गर क्षेत्र में जो दुर्ग उपलब्ध हैं उनमें महोरगढ़ का दुर्ग, नौशहरा का दुर्ग, बहरामगढ़ का दुर्ग आदि उल्लेखनीय हैं।

महोरगढ़ दुर्ग की स्थापत्य कला पर विद्यारत्न खजूरिया ने गम्भीर अध्ययन किया है। इस दुर्ग के सिंह द्वार पर अरबी-भाषा में एक खंडित शिला लेख भी उपलब्ध है जो अस्पष्ट होने के कारण पढ़ा नहीं जा सकता। इस दुर्ग की ड्योढ़ी के ऊपर बने प्रत्येक शिखर पर क़ुरान शरीफ की आयतें पत्थरों को कुरेद-कुरेद कर लिखी गई हैं। ड्योढ़ी की मेहरावों की चोटी पर कमल फूल के सुन्दर डिजाइन भी बने हैं। इस दुर्ग के चार भाग हैं। पश्चिमी सिरे का नाम महोरगड़, मध्य भाग का नाम ठेरगढ़ तथा पूर्वी-भाग का नाम ववनेरगढ़ है। अनुमान है कि इस दुर्ग का निर्माण सिकन्दर सूरी ने सरहिन्द स्थान पर 1555 ई० में हुमायूं से पराजित होने के बाद करवाया था। इस क्षेत्र में चिंगस, थन्ना मंडी, दरिहाल

आदि स्थानों में मुगलसरायें भी उपलब्ध हैं जो स्थापत्य कला की दृष्टि से मुग़ल वास्तुकला का अनुपम उदाहरण हैं। इसी प्रकार मुस्लिम भवनों में जामा मस्जिद राजौरी, जामा मस्जिद निज़ामुद्दीन पुंछ, मस्जिद दित्तु वजीरनी पुंछ, मस्जिद मस्तगढ़ जम्मू आदि उल्लेखनीय हैं। मुस्लिम स्थापत्य कला के अन्तर्गत बने भवनों की विशेषता यह है कि इनके गुम्बद गोल और विशाल हैं। इनके स्तम्भ पतले किन्तु प्रवेश द्वार खुले और विशाल हैं। मध्य युग या मुस्लिम काल में इस प्रदेश में कई ऐसे भवन, दुर्ग और मन्दिर आदि भी निर्मित हुए हैं और इनमें विशुद्ध भारतीय स्थापत्य कला का प्रभाव है।

सिक्ख डोगरा काल

डुग्गर के राजाओं ने अपने-अपने राज्यों की रक्षार्थ जिन दुर्गों का निर्माण किया उन पर राजस्थानी तथा मुगल स्थापत्य कला का मिश्रित प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। डुग्गर के अन्तर्गत निर्मित अधिकांश दुर्गों का निर्माण सतारहवीं शताब्दी के बाद ही हुआ है। इनमें कई दुर्ग शिलाखण्डों से निर्मित हैं तो कई नानकशाही अथवा साधारण ईंटों से भी निर्मित हैं। सुरक्षा की दृष्टि से दुर्ग अति सुदृढ़ हैं। सतारहवीं शताब्दी या उसके बाद जो दुर्ग बने उनमें भीमगढ़, ध्यानगढ़, गुलाबगढ़, बसन्तगढ़, थड़ा कलेयाल, बाहु, बसोहली, भड्डू, सुन्दरीकोट और अखनूर के दुर्ग उल्लेखनीय हैं। इनके निर्माण में चूना सुर्खी का प्रयोग हुआ है। इन दुर्गों की बाह्य प्राचीरें अति सुदृढ़ हैं। इनके मुख्य द्वार ऊंचे किन्तु संकीर्ण हैं।

डोगरा राजाओं ने इस युग में अपने रहने के लिए भी अति भव्य और आकर्षक महलों का निर्माण भी करवाया। ये महल नगर के ऊपरी भाग में हैं और इनके सम्मुख खुला स्थान भी है। इन महलों की प्राचीरें सुदृढ़, मुख्य द्वार आकर्षक तथा अलंकृत हैं। महलों के भीतर भित्ति चित्र भी उपलब्ध हैं जो अपनी श्रेष्ठता के कारण विश्व प्रसिद्ध हैं। डुग्गर के महलों में बसोहली के महल अति चर्चित रहे हैं। इन्हें पहाड़ के सात आश्चर्यों में परिगणित किया जाता रहा है। इन महलों के निर्माण का कार्य राजा अमृतपाल (1757-76) के समय में आरम्भ हुआ और ये महेन्द्रपाल के समय में पूर्ण हुए। जसरोटा के महलों का निर्माण महाराजा रणजीत देव के समकालीन राजा रत्नदेव के समय में आरम्भ हुआ और इनके निर्माण में एक सौ से भी अधिक -र्ष लगे। चनैनी के राजमहलों का निर्माण राजा शमशेर सिंह हिंताल के समय में हुआ। रामनगर के भव्य महलों का निर्माण राजा सुचेत सिंह ने करवाया जम्मू में दरबारगढ़ राजमहल राजा ध्रुवदेव के समय में बनना आरम्भ हुए महाराजा रणवीर सिंह के समय तक इनमें निर्माण कार्य होता ही रहा। दरबारगढ़ के महल अपने अनुपम सौंदर्य के कारण पूरे देश में प्रसिद्ध रहे हैं। इन महलों के प्रवेश द्वार बड़े ऊंचे और खुले हैं। इन महलों की चारदीवारी के भीतर रमणीक वाटिका है। इन महलों के प्रकोष्ठ सुदृढ़ तथा विशाल हैं। रियासी के महल, उधमपुर के महल महाराजा गुलाब सिंह के समय में बने। बिलावर के राजमहलों के अवशेष चौगान के ऊपरी भाग में अब भी बिखरे पड़े हैं।

डोगरा राजाओं ने अपने-अपने राज्यों में कई भव्य सुन्दर नागर शैली के मन्दिरों का निर्माण भी करवाया जिनमें रघुनाथ मन्दिर, रणवीरेश्वर मन्दिर, इन्द्रेश्वर महादेव का मंदिर' अर्केश्वर महादेव का मंदिर, वीरेश्वर महादेव का मन्दिर, खड्गेश्वर महादेव, विलकेश्वर महादेव मंदिर, भूतेश्वर महादेव मंदिर, रणवीर सिंहेश्वर महादेव मंदिर, रणवीरेश्वर महादेव मंदिर, लक्ष्मी मंदिर, गदाधर जी का मंदिर उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त उधमपुर तथा पुरमंडल में देविका नदी के तटों पर बिखरे पड़े भवनों के अवशेष डुग्गर की स्थापत्य कला के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि कहना न होगा कि डुग्गर की स्थापत्य कला की जहां एक अपनी पहचान है वहां वह अपना चिर गौरव बनाये रखने में भी पूर्ण समर्थ बनी हुई है। □

आग्रह !

वार्षिक सदस्यता शुल्क निम्न पते पर 10 रु० डिमाण्ड ड्राफ्ट/धनादेश/पोस्टल आर्डर से भेज कर समय भी बचाएं : असुविधा भी।

पता :

एडीशनल सेक्रेटरी शीराज़ा हिन्दी, जे० एंड० के० अकादमी ऑफ आर्ट कल्चर एंड लेंग्वेजिज, जम्मू-180001।

○○

प्रकाशित कृति को समीक्षार्थ भेजते समय कृपया दो प्रतियां भेजना न भूलें।

—सं०

कश्मीरी संगीत वाद्य रूप और रचना

□ अवतार कृष्ण राज़दान

कश्मीर को जिस प्रकार प्रकृति ने अनुपम सौंदर्य का मनमोहक उपहार दिया है, उसी तरह यहां के जनमानस को एक समधुर संगीत धारा में तरंगायित भी किया है। वह संगीत जिसमें इनके दामन में बहती हुई कलकल करती नदियों की लय झीलों और झरणों का रोमांच, गुनगुनाती हवाओं की सिहरन और रंगारंग फूलों का सौंदर्य मुखरित है। किन्तु इन सबसे बढ़कर इसमें प्रेमी हृदयों का मिलन सुख तथा विरहियों के वियोग का दर्द घुला हुआ है। किन्तु यहां ध्यातव्य है कि किसी भी कला-विशेष की परंपरा तभी स्थिर रह सकती है जब कि उससे सम्बद्ध कलाकार काल एवं स्थानीय परिवेश के अनुसार साधनों का प्रयोग करे। यही स्थिति संगीत की भी है। साज़ नहीं तो मधुर झंकार नहीं। संगीत का अस्तित्व साज़ पर निर्भर है। कश्मीर में इसकी परंपरा आकर्षक एवं प्राचीन होने के कारण इसमें प्रयुक्त वे साज़ हैं जिनमें कुछ स्थानीय हैं और कुछ विदेशी जिनका हमारी संगीत परम्परा में समय-समय पर प्रयोग होता रहा है। इनमें से अधिकांश वाद्य आज भी प्रचलित हैं।

कश्मीरी संगीत परम्परा प्राचीन है। नीलमत पुराण में इन संगीत वाद्यों का उल्लेख इस प्रकार हुआ है—'वाद्यः, वाद्यत्रः, वाद्यवन्धः[1]। इस प्रकार यहां वाद्यों को चार भागों में विभक्त किया गया है।

1. घनः (झांझ मंजीरा) 2. विततः (मिट्टी के बने साज़) 3. तंत्री (वे वाद्य जिनमें तार लगा हो) तथा 4. सुषिर (वे साज़ जो हवा के दबाव या जोर से बजाए जाएं)[2] ये वाद्य प्रायः चमड़े एवं तार से बने हुए होते थे।[3] नीलमत पुराण के अनुसार

---

1. नीलमत पुराण, भाग 5, श्लोक 247, 750, 76, 816
2. इसका उल्लेख नीलमत पुराण में भी हुआ है।
3. कामसूत्र पर जयमंगल की टीका।

यहां के संगीत में केवल दो प्रमुख वाद्यों का प्रचलन था—अनहद वाद्य एवं तंत्री वाद्य[1]। इनके अन्तर्गत कौन-कौन से वाद्य आते है—निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इस पुराण में कुछ ऐसे वाद्यों का भी संकेत है जो यहां के संगीत में प्राचीन काल से ही उपयोग में लाए जाते थे। इन साज़ों के नाम हैं --

1. वीणा, 2. वीणु, 3. शंख, 4. पटहली, 5. मुरज और 6. घंटा।

वीणा[2] कश्मीर का प्राचीन प्रचलित साज़ है। यहां आज भी इसका प्रयोग संगीत में किया जाता है। नीलमत पुराण में इसका उल्लेख तीन बार हुआ है। वर्तमान सौ तारों वाला संतूर तो इसी नाम से अभिहित किया जाता है। इसके बाद वीणु[3] का नाम लिया जा सकता है। नीलमत पुराण में इसका केवल एक उल्लेख मिलता है, यह प्रायः यहां के देवस्थानों पर बजाया जाता था।[4] शंख भी यहां का बहुप्रचलित वाद्य था। यहां यह दो अवसरों पर विशेष रूप से बजाया जाता था। एक कौमुदी महोत्सव पर, दूसरा राजा के राजतिलक पर[5]। वटहली[6] आजकल का ढोल भी यहां के संगीत का मुख्य वाद्य था। इसको प्रायः तम्बूरे के साथ बजाया जाता था।[7] अंतिम है मुरज।[8] मुरज का विपर्य है मृदंग। इसके तीन प्रकार हैं—अंलिग, उर्वय: तथा अनिक:। नीलमत पुराण में इनका उल्लेख तीन बार आया है।

राजतरंगिणी में हमें यहां के संगीत में प्रयुक्त कई वाद्यों की जानकारी प्राप्त होती है। कल्हण के अनुसार यहां इनका प्रचलन आदिकाल से है। इनमें से कुछ वाद्यों के नाम इस प्रकार हैं—तम्बूरी वांसुरी, ढोल और मृदंग।[9] उस समय लोक और शास्त्रीय संगीत में ऐसे ही वाद्यों का प्रयोग किया जाता था। इसके अतिरिक्त ये देव स्थानों में भी वजाए जाते थे। जहां तक राजदरबारों में बजाए जाने वाले वाद्यों का सम्बन्ध है, उनके नाम इस प्रकार हैं—हुड़क, नगाड़ा, मंझीरा, बांसुरी, और ढोल। ये वाद्य प्रायः नृत्य के साथ बजाए जाते थे। इनमें से हुड़क को छोड़कर शेप सभी साज़ों का उपयोग आज भी किया जाता

---

1. नीलमतपुराण, भाग 5, श्लोक 663
2. ऐतये अरुणिक्य ने इस साज़ को पांच भागों में बांटा है जो इस प्रकार है—
   1. शीर्प (सिर) 2. उद्यारू (पोल भाग का छेद) 3. अंभन: (ध्वनि मंडल) 4. तन्त्र (तार) और वाद्यत:। इस साज़ का उल्लेख रामायण (पृ० 216) जातक कहानियां (जातक, भाग 3, पृ० 0 अग्रवाल कृत) संहित निकाय (भाग 4, पृ० 196) और अर्थशास्त्र (पृ 125) में हुआ है।
3. वीणु वीणा का विपर्य है, अर्थात वह साज़ जो हवा के दबाव से चलता हो।
4. नीलमत पुराण, भाग 5, पृ० 428
5. वही, भाग 5, पृ० 386 और 816
6. रामायण, भाग 5, पृ० 10, 39
7. नीलमत पुराण, भाग 5, पृ० 32
8. नीतिशास्त्र, भाग 23, पृ० 21
9. राजतरंगिणी, तरंग 2, श्लोक 126, तरंग 7, श्लोक 285, 1601, तरंग 8, श्लोक 2398-91

है। हुड़क यहां का बहुप्रचलित साज़ रहा है। यह वाद्य एक बड़ी नली की तरह होता था जिस पर लगभग एक दर्जन से अधिक छेद होते थे। यह बांसुरी की तरह बजाया जाता था। इसका प्रयोग प्राय: राजमहलों में होता था। ढोल भी यहां का प्राचीन प्रचलित साज़ है। इसका प्रयोग चौथी शती से माना जाता है। इसका प्रमाण हमें भू-गर्भ से निकाली गयी उन मृण-टिकड़ियों से मिलता है जिन पर ढोल वादकों के चित्र अंकित हैं।

यहां के लोक-संगीत में प्रयुक्त वाद्यों के सम्बन्ध में हमें राजतरंगिणी से पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है। उदाहरण स्वरूप 'छकरी' का अस्पष्ट वर्णन करते हुए कल्हण ने राजतरंगिणी में लिखा है —मिहिर कुल वंशीय राजा भीष्मकार के शासन में यहां स्थानीय साज़ों के बजने का प्रचलन था। यह वाद्य थे मिट्टी के बने हुए घड़े, पीतल के बर्तन, चिमटा आदि। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उस समय छकरी गायन लोकप्रिय था क्योंकि इस संगीत प्रणाली में लगभग यही साज़ बजते हैं। इसके अतिरिक्त यहां के लोक-संगीत में तम्बूरी और बांसुरी का प्रयोग भी होता था। ये दोनों साज़ प्राय: राजमहलों में शाम के समय बजाए जाते थे।

कश्मीर में मुस्लिम शासन-काल का आविर्भाव होने पर यहां के संगीत में स्थानीय साज़ों के साथ-साथ विदेशी साज़ों का प्रयोग भी होने लगा। इनमें से अधिकांश वाद्य ईरानी एवं तूरानी थे। इन में रबाब एवं उद्द उल्लेखनीय है। यहां इनके बजने का प्रचलन बड़शाह के शासनकाल में हुआ।

रबाब मूलत: एक ईरानी साज़ है। ये खुरासान में शौक से बजाया जाता था। कहा जाता है कि जब बड़शाह ने विदेशी संगीत शास्त्रियों को अपने शाही दरबार में आमन्त्रित किया तो खुरासान का एक संगीत शास्त्री अपने साथ रबाब लाया। उस समय रबाब अरबों का राष्ट्रीय साज़ था।[1] यहां इसका प्रचलन केवल लोक संगीत में रहा। आजकल यहां के संगीत में इसको मुख्य साज़ के रूप में प्रयोग किया जाता है।

'उद्द' कश्मीरी संगीत का एक मुख्य वाद्य था। आजकल यहां इसका प्रयोग नहीं होता। यह भी एक ईरानी वाद्य है। यहां यह बड़शाह के शासन काल में पहुंचा। इसका आविष्कार वस्तुत: हीरा में हुआ है जो उस समय ईरान का एक प्रदेश था। बाद में यह साज हिजाज़ में लोकप्रिय हो गया। कहा जाता है कि यहां इसे हिजाज़ से मुल्लाउद्दीन लाया था। वह एक सफल उद्दवादक माना जाता था।

सूफ़ियाना कलाम, सूफ़ी-संगीत में प्रयुक्त होने वाले साज़ इस प्रकार हैं—सितारी या सितार, कश्मीरी संतूर या साज़े कश्मीरी और तबला। इनमें से कौन से वाद्य विदेशी हैं और कौन से स्थानीय निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। 'तुज़के-जहांगीरी' में यहां के एक और साज़ का उल्लेख है। इसका नाम 'मिज़मार'[2] है। आजकल यहां इसका प्रयोग नहीं होता। यह बांसुरी की तरह लकड़ी का बना होता था। इस में कई छेद होते थे। इसके अतिरिक्त 'तुज़कि' में उल्लेख है कि यहां के संगीत में एक और साज़ बजता था जिसको तम्बूर कहते थे। कहा जाता है कि बड़शाह के शाही दरबार में मुल्ला हसन जाफरन नामक एक संगीत शास्त्री ने दस तारों वाली तम्बूरी का आविष्कार किया था जो

1. A History of Arabian Music, P. 210
2. 'तुजकि जहांगीरी, भाग 2, पृ० 148

कश्मीरी लोक-संगीत में बजायी जाती थी। आजकल न यहां इस वाद्य का प्रचलन है, न ही यह कहीं उपलब्ध हैं। मुसलमानों के शासन-काल में यहां जो अन्य वाद्य प्रचलित थे, उनके नाम इस प्रकार हैं—

1. गिचक या गिज़क (यह सारंगी की तरह होता था) 2. छोटा सितार या सितारी, 3. कानुम (सौ तारों वाला साज) जो यहां लोकप्रिय था।[1] जो वाद्य हवा के दबाव से बजाए जाते थे, उनके नाम हैं—टाटागाज़ी, अलगुज़ा और नफ़ीरी।[2]

कश्मीरी लोक-संगीत का मुख्य वाद्य तुंबक नारी अथवा कश्मीरी ढोलक इस समय भी प्रयोग में लायी जाती है। वस्तुतः यह अभी तक मालूम नहीं हो सका है कि इसका इतिहास कितना पुराना है। वैसे विद्वानों का कथन है कि यहां इसका प्रचलन मुसलमानों के शासन-काल से हुआ है। इस वाद्य के सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि यह सम्भवतः बड़शाह के किसी दरबारी संगीतकार का आविष्कार हो सकता है। कुछ भी हो, यह यहां के लोक-संगीत विशेषतया छकरी में एक मुख्य वाद्य के रूप में प्रयुक्त होती है।

यों कश्मीरी संगीत में अन्य वाद्यों के साथ-साथ इस समय हारमोनियम, सितार, वायलिन, तबला, गिटार, पियानों आदि जैसे वाद्य भी प्रचलित हैं। □

---

1. 'Kashier' by Dr. M.D. Sufi, Page 553
2. Kashier by Dr. M.D. Sufi P. 553

यात्रा संस्मरण
बातें दूर देश की

कैलिफोर्निया का 'सी वर्ल्ड'

□ चन्द्र कांता

पर्यावरण के प्रति अमरीकावासियों की गहरी चिन्ता की एक अद्भुत मिसाल है "सी वर्ल्ड", एनहेसर बुश कम्पनियों ने "सी वर्ल्ड" पार्कों को आकार देकर पर्यावरण के प्रति गहरी जागरुकता का परिचय दिया है। कैसी है यह रहस्यमयी दुनिया? कैलिफोर्निया की यात्रा के दौरान हमारा मन भी जानने को उतावला हो उठा। सो हम सेनफ्रांसिस्को से लास एंजिलस पहुंच गए। वहां से सेन डियागो तक कार से जाते दाएं-बाएं बड़ी पहाड़ियों के ऊपर बस्तियां बेहद सुन्दर और चित्रात्मक लगीं। कुदरत के कुशल चितेरे ने एक वृहत कैनवस पर प्रकृति का सुन्दर चेहरा आंक दिया है। पहाड़ियों की ढलान पर, हरियाली के झुरमुट में लाल-भूरी छतों वाले घरों के गुच्छे, आंख मिचौनी सी खेलते हुए। पैसिफिक सागर तट पर लोगों का हुजूम "वीक-एंड" मनाने इकट्ठा हो गया था। सेन डियागो यों भी धनी लोगों का शहर माना जाता है। समुद्र पास होने के कारण अक्सर सैलानियों की भरमार रहती है। फिर "सी वर्ल्ड" देखने लोग दुनिया के कोने कोने से यहां चले आते हैं।

हम पहुंचे तो "सी वर्ल्ड" पार्क के बाहर काफी लोग इकट्ठा हो गए थे। पर भीड़ का भी एक अद्भुत अनुशासन है यहां! एक दूसरे को रौंदने वाली हुड़दंगी रेलपेल यहां नहीं है। जल-जीवों की दुनिया में कदम रखने से पहले हमने भी अनुशासन से प्रभावित होकर, सोविनियर पार्क गाइड ले लिया। देखा, कौन शो कहां हो रहा है। ज्यादातर शो बीस मिनट के होते हैं। छ; सात घण्टों में पूरा सी वर्ल्ड देखा नहीं जा सकता, सोचा, कोशिश करेंगे, जितना भी हो सके।

भीतर घुसते ही अफ्रीकी एन्वांयरन्मेंटलिस्ट बाबा डियोम के शब्द हमारा स्वागत करते हैं,—"फार इन द एंड, वी विल कंजर्व वॉट वी लव, वी विल लव ओनली वाट वी अंडर-स्टैंड, वी विल अंडरस्टैंड ओनली वॉट वी आर टॉट।"

सच ही तो ! जो हमें सिखाया जाता है, वही हम समझते हैं। जो समझते हैं, उसे ही प्यार करते हैं। अंततः जिसे हम प्यार करते हैं, उसे बचाने व संवारने की चिन्ता भी करते हैं।

अफ्रीकी पर्यावरण संरक्षक बाबा डियौम के शब्द पार्क में कई जगहों पर लिखे गए हैं, एक सीख, एक हिदायत की तरह। पृथ्वी का संतुलन बनाए रखने के लिए जीव-जंतुओं के महत्व को यहां के कार्यकर्ता, छोटी-मोटी कक्षाएं लेकर जगह-जगह समझाते हैं. स्कूल-कालेज के छात्र खूब रुचि से इन खुली कक्षाओं में भाग लेते हैं। नीले लाल शॉर्ट्स और सी वर्ल्ड के मोटिफों से सजी बनियानों में छात्रों के झुंड फूलों के गुच्छों से यहां से वहां नज़र आते हैं।

"सी वर्ल्ड" में घूमते पार्क में बीचों बीच खड़े "स्काई-टावर" को ध्यान में रख कर हमारी यात्रा शुरू हुई। यहां से विभिन्न दशाओं में बने स्टेडियमों के दिशा निर्देश और सूचनाएं जगह-जगह पर उपलब्ध हैं। पार्क गाइड से सुविधा होती है। यदि आप कई लोग इकट्ठा पिकनिक मनाने आए हैं और अलग-अलग शो देखना चाहते हैं तो बेशक जाइये, पर वापसी पर प्रवेश द्वार पर बने बैंड-स्टैंड पर मिलिए। इस जगह को यहां यात्री मिलन-स्थली बना लेते हैं। कोई बच्चा खो जाए तो एंट्रेंस प्लाज़ा के सूचना केन्द्र से सम्पर्क कीजिए। वे आपकी मदद करेंगे। यहां सभी सुविधाएं हैं और प्रभावित करने वाला अनुशासन ! बच्चों की नैपी बदलने से लेकर बीमार व बूढ़ों के लिए व्हील चेयर, स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवाएं, दुर्घटना के समय चिकित्सा, सब हाजिर, ! खाने-पीने की सुविधाएं तो हैं ही। वो नीला निशान है न उस तरफ ? वहां कई रेस्तरां हैं जो जी चाहे खाइए, खरीदिये। "सी वर्ल्ड" आए हैं तो जाहिर है यहां से कोई भेंट-उपहार, यादगार साथ लेकर लौटेंगे, उसके लिए इस ओर लाल निशान वाली जगहों पर जाइए वहां अनेक "गिफ्ट-शॉप" मिलेंगे।

इधर लगता है शो शुरू होने वाला है। लोग पंक्तियों में खड़े हो गए हैं। शांमू और डाल्फिनें आपको भिगोने से बाज़ नहीं आएंगे, सो भीगने से डरिए मत ! हां, अपने कैमरों और छोटे बच्चों को पानी की बौछारों से ज़रूर बचाइए। भीगने से घबराते हों तो स्टेडियम की ऊपर की सीढ़ियों पर बैठ कर शो देखिए।

लो ! हमारे पहुंचने से पहले ही "शामू स्टेडियम" खचाखच भर गया है। खुले स्टेडियम में, सागर तट से लगे नीले पानी के गहरे जलाशय को तीन तरफ से ऊंचे जंगलों से बांध कर विशिष्ट आकार दिया गया है। एक तरफ टहेलों के आने जाने का खुला रास्ता है। छोटे बड़े बच्चे "शामू" की आवाज़ों से स्टेडियम गुंजा रहे हैं। लीजिए, दर्शकों की दोस्ताना पुकार सुन कर शामू साहब हाजिर हो रहे हैं। तौबा रे। कहीं आपका दिल बैठ तो नहीं गया ? यह भारी भरकम डील-डौल वाली चीज़ शामू द किलर व्हेल है या कोई काला पहाड़ स्टेडियम में चला आ रहा है ? एक बार इस भयावह आकृति को देखकर दिल में दहशत पैदा हो जाती है। कहीं जलाशय के जंगले से कूद कर स्टेडियम के तमाशबीनों को दबोच लेतो ? एक जरा सी करवट लें जनाब तो दर्जनों लोगों की महीन चटनी बन जाए ! ज़रूर इनकी करवटों से बड़े-बड़े जलयान कलाबाज़ी खाते होंगे। लेकिन इधर का हाल ही माशाअल्लाह दूसरा है। शामू साहब स्टेडियम के जंगले के पास सरक कर दर्शकों को आदाब करते हैं। तरह-तरह के करतब दिखा कर लोगों को रिझा रहे हैं। यह देखिए, ज़रा सी

करवट बदली हुजूर ने कि बारहवीं तेरहवीं पंक्तियों तक बैठे लोग पानी की चादरों में नहा लिए। ऊंची झालरदार लहर उठी कि आधा स्टेडियम पानी में डूब गया। लेकिन लोग हैं कि तालियां बजा रहे हैं जैसे नन्हें बच्चे खिलंदड़ी शोखियों से उन्हें रिझा रहे हों। ओह! हाय शामू आह नामू! ओ नकीना! अब बेबी शामू अपनी ममी के साथ बाअदब बामुलाहज़ा होशियार के अन्दाज़ में लोगों के सामने पधार रही हैं। पानी की कई-कई गज़ ऊंची लहरें स्टेडियम को चौतरफा भिगो रही हैं पर बच्चे हैं कि पानी के सैलाब में भी खुश। बेबी शामू को पीठ पर बिठाए शामू साहब वृहत जलाशय के चक्कर लगा रहे हैं। श्रीमती शामू साथ-साथ डोल रही हैं। क्यों नहीं, आखिर अर्धांगिनी जो हुईं। यह छोटी पहाड़ी सा दिखता "बेबी शामू" भी कम उस्ताद नहीं। करवटों पर करवटें बदलता लोगों का मन मोह रहा है। संचालिकाएं, तरह-तरह के आदेश दे रही हैं। 'स्वागत करो दोस्तों का शामू' "अब बाई-बाई करो, बहुत हो गया। लोग पानी में भीगे परिन्दों से पंख झटकते हैं और शामू संचालकों का आदेश मानकर अभिवादन करता हुआ लौट जाता है। लौटते हुए शामू परिवार को लोग विदा देते हैं—"बाई शामू! बाई नामू, बाई नकीना।"

जैसा बाप वैसा बेटा, बल्कि बेटा बाप से भी दो कदम आगे। बेबी शामू मुड़-मुड़ कर मुंडी हिलाता है—इतने सारे दर्शक, यानी "इत्ते सारे दोस्त। छोड़ कर जाने का मन नहीं करता। लेकिन संचालक महोदय का प्यार भरा आदेश टाला भी तो नहीं जा सकता। एक बार फिर जंगले के करीब आ आकर शामू परिवार माथा नवाता है, थैंक्यू दोस्त, तुम आए। अलविदा!

यहां ये खूंखार जीव और मनुष्य एक दूसरे को समझते हैं, मानते हैं और प्यार करते हैं। शो समाप्त होने पर मन में कई प्रश्न घुमड़ने लगते हैं। इन संचालकों को कितने कितने वर्ष श्रम करना पड़ा होगा, इन खूंखार जीवों को सिधाने में? यह सिखाने-समझाने, प्यार करने और संवार कर रखने का मंत्र ही तो बाबा डियोम ने दिया है, जो यहां के संरक्षकों का दर्शन बन गया है। आदमी भयावह जीवों को प्यार से दोस्त बना सकता है, फिर आदमी और आदमी में अविश्वास और सिर फुटौव्वलें क्यों? यह प्रश्न बराबर साथ चलता रहता है।

"शामू द किलर व्हेल" के अलावा भी बहुत कुछ है यहां सागर के अनूठे जीवों का रहस्य एवं रोमांच भरा संसार। उधर डाल्फिनों और व्हेल मछलियों की भिड़ंत शुरू होने वाली है। डाल्फिनों के करतब तो सचमुच हैरतअंगेज़ हैं। बच्चों की ही नहीं बड़ों की उत्सुकता भी चरम पर है। उधर स्टेडियम की तरफ देखें चलें? "कोड़ाक" वाले "न्यू फ्रैंडस' नाम से बहुत ही मज़ेदार शो प्रस्तुत करने जा रहे हैं। देखें भला, व्हेल मछलियां नन्हीं डाल्फिनों की दोस्त कैसे बनती हैं? यों तो डाल्फिनें प्यारी-प्यारी अबोध बच्चियों सी नज़र आती हैं। बोतलों जैसी नाक वाली ये खिलदड़ी डाल्फिनें बड़ी प्यारी-प्यारी आवाजें निकालती हैं, जैसे आदमी की नकल उतार रही हों। अपने मास्टरों के इशारों पर नाचती ये, कभी ऊंचे खम्भों पर चढ़कर कत्थक नृत्यांगनाओं सी थिरकने लगती हैं, कभी पानी पर ऊंची कूदें मार कर लांग-जंप-हाई जंप के नए-नए कीर्तिमान स्थापित करने की होड़ में अजब समां बांध देती हैं। देखिए तो कैसे एक आदमी को व्हेल मछली के पंजे से छुड़ाकर ले आई है। चालाक हैं। चालाक, फुर्तीली और हंसमुख। भा ी भरकम व्हेलों को एकदम चक्कर में डाल देती है। इन बच्चियों सी डाल्फिनों की ताकत कम नहीं है, पर बिना छेड़े ये कभी

आप पर हमला नहीं करेंगी। बिना कारण का कटखनापन तो आदमी की खसूसियत है। ये दोस्ती निभाना जानती है। तभी तो चालाक व्हेल मछलियां भी दोस्त बने रहने में ही अपनी खैरियत समझती हैं। आइए, उधर खुले जलाशय में इन्हें करीब से देख लें। दर्जनों लोग इन्हें हाथों से इनका मन पसंद भोजन खिलाते हैं। खिलाकर देखें ? आहा कैसे उछल कर दाना हाथ से छीन लेती हैं और गप्प से गटक लेती हैं। चपल बच्चियों की तरह झपट कर मन पसंद चीज़ ली और भाग लीं। डर लगा, कहीं हाथ ही ना खा जाएं। लेकिन कहीं कोई खरोंच भी न लगी, बड़ी समझदारी व सलीकेदारी से अपनी चीज़ ले ली, तभी तो नन्हें बच्चे भी अपने हाथों से खिला रहे हैं।

दूसरी तरफ "सी लायन" और ऑटर शो चल रहा है। पेप्सी कोला वाले ' पाइरेट्स ऑफ पिनिपेड" नाम का शो प्रस्तुत कर कर रहे हैं। जी हां, समुद्री शेर कहते हैं इन्हें। देखने में कुत्ते और मगरमच्छ की "मिली-जुली आकृति वाले ये भयानक से लगते जीव भी आदमी के इशारों पर चलते हैं यहां। पानी के ऊपर बने जहाज़नुमा घर के बीच लुका-छिपी खेल चल रहा है। समुद्री डाकू बने 'सी लायन" जहाज़ से ढेर सारा सामान खींच कर बाहर निकाल लेते हैं। डाकू जो हुए। आर्ट्स सामान धकेल कर वापस जहाज़ के अन्दर ले जाते हैं। यह आपसी खींचातानी डराती नहीं, खासा मनोरंजन करती है। लोग पेप्सी पीते, चिप्स-आईसक्रीम खाते, ठहाके लगा कर हंसते हैं। हंसने के लिए बहाना चाहिए यहां। बच्चों की तो टकटकी बंधी है। आदमियों का सा व्यवहार जो कर रहे हैं ये विचित्र जीव। अपने मास्टरों के आदेश का पालन करते, कभी-कभी ये उनके साथ मसखरियां भी करते हैं। डाल्फिनें तो सचमुच लाड से बिगड़ी बच्चियां हैं। देखिए तो कैसे उस लाल ट्यूनिक वाली लड़की को घसीट कर पानी में खींच लाई—, आओ, आओ, तुम भी हमारे साथ इस नीले नीले पानी में कूदो, बड़ा मजा आएगा। नो-स्टाप इट। नीली शर्ट वाली लड़की धमकाती है—, नहीं आज नहीं, फिर कभी' ! लेकिन यह ज़िद्दन माने, तब न ? खींच ही लिया उसे भी पानी में छपाछप छींटे उछाल मस्तियाने लगीं। अच्छा भई, तुम जीती मैं हारी, लो, मैं भी तैरती हूं तुम्हारे साथ ! अब खुश ? अरे नहीं, मेरी पीठ पर मत चढ़ना, मारूंगी......।

"हिं हिं हिंऽऽऽऽ ! चिढ़ाने के अंदाज़ में चुलबुली डाल्फिनें छेड़खानी करती हैं और छोड़ देती हैं। चलो जाने दिया इस बार ...। दर्शक तालियों से स्टेडियम गुंजा देते हैं। आदमी की भाषा समझने वाले ये जीव अपनी हुंकारों, पुकारों से अपनी खुशी, खीझ, अपनी नाराज़गी दिखाते हैं। अजीब से संवेदन का तार जुड़ा है आदमी और बेजुबान जीवों के बीच।

उधर कैंडी शॉप से लोग कैंडीज़ ले रहे हैं। पापकार्न, सैंडविचिज़ आईसक्रीम, ! खाते खाते नज़ारा देखते हैं। लेकिन मजाल है कोई रैपर या बचा हुआ खाना, आईसक्रीम कोन रास्ते पर गिरा दें। "यूज़ मी" डिब्बों में कचरा सावधानी से लपेट कर डाला जाता है। इन्हें देख अपने देश की पिकनिकें याद आ जाती हैं। लौटने पर पार्क कूड़ाघर नज़र आता है। जगह-जगह बिखरा कचरा, कागज़, खाद्य सामग्री और उन पर झपटते कुत्ते ! अफ़सोस भी कम नहीं होता अपनी आदतों पर। बहरहाल।

घूमते-घूमते प्यास लगती है। इधर घुमक्कड़ी के वक्त भी लोग मज़े में मुंह चलाते रहते हैं, हम ही क्यों संकोच करें ? "कैसेकेड ग्रिल एंड कैफे पर खासी भीड़ इकट्ठा हो गई है। चिकन एंड बिस्किट शाप पर फ्राइड चिकन और बियर के बड़े-बड़े गिलास उपलब्ध हैं

"सी वर्ल्ड" की स्पेशल कुकीज़। माफिन, सिनेमन रोल और फ्रास्टी योगर्ट मिलती हैं। आप क्या लेना पसन्द करेंगे ?

इधर "द हब्बस सी वर्ल्ड रिसर्च इंसटिट्यूट में सामुद्रिक जीवों और मनुष्य के आपसी व्यवहार, भावनाओं और प्रतिक्रियाओं पर शोध होता है। 1963 में इसकी स्थापना हुई है। इनका उद्देश्य है दुर्लभ हो रहे सामुद्रिक जीवों व अनमोल खज़ानों की खोज एवं संरक्षण।

एन्हेंसर बुश कम्पनियां और हब्बस रिसर्च इंस्टिट्यूट के समर्पित कार्यकर्ता मिल कर इस "सी वर्ल्ड" में सामुद्रिक जीवों के शोध एवं संरक्षण का दायित्व निभाते हैं। जगह-जगह पर बने पक्के प्लेटफार्मों पर छात्रों-जिज्ञासुओं को इकट्ठाकर उन्हें भाषणों, वीडियो टेपों आदि द्वारा सी वर्ल्ड पार्कों और उनमें पलते जीवों का इतिहास व महत्व समझाया जाता है कि खत्म होती व्हेल, डाल्फिन और शार्क मछलियों को पर्यावरण की सुरक्षा के लिए बचाना कितना ज़रूरी है।

उस "फारबिडन रीफ" पर उथले पानियों में चमगादड़ जैसे जीव पल रहे हैं। लोग उन्हें उनका मन-पसन्द भोजन खिला रहे हैं. जो जगह-जगह पर उपलब्ध हैं। गहरे पानी में रहस्यमय से लगते "मोरे ईल" हमने यहीं पर देखे। पानी के इस विशाल साम्राज्य में कितने विचित्र आकार प्रकार के जीव निःशंक घूमते फिरते हैं। इन्हें देखकर सृष्टि के नियंता की कारीगरी पर हैरान हुए बिना रहा नहीं जाता। "कैलिफोर्निया टाइड पूल" में समुद्र के सितारे। "सी स्टार्स" और "सी अर्चिन" लुका छिपी खेल खेलने में मस्त है। आप चाहें तो इन्हें छू सकते हैं। पर ये हाथ लगाने दें तब न। नीले पानियों को अपने चमकीले-लिश्कदार पंखों की कौंध से चौंधियाती ये नन्हीं सुन्दर मछलियां ! इन टिमकते तारों को छूना आसान नहीं। अपने चौतरफ रोशनी का जाल बुनती ये चपलता से पानी के अन्दर और सतह तक आवाजाही करती हैं, बिल्कुल ज़री की गोट लगी चुन्नरी ओढ़े अल्हड़ किशोरियों की तरह एक पल झलक दिखाकर आंख की ओट। अभी दिखीं, अभी ओझल। नज़रें तरसती रहती हैं कब दीदार कराएंगीं ?

सी वर्ल्ड पार्क में जगह-जगह हल्के-गहरे पानियों के ताल व जलाशय बने हैं। उधर पेड़ों की छतरी के पास बने ताल "अलास्का सी आटर" है। इन्हें प्रिंस विलियम सांउड ऑयल स्पिल से बचाकर यहां लाया गया है और पूरे एहतियात और प्यार से इनकी देख-भाल की जाती है। उधर के ताल में जो "सी लायन" और सील मछलियां दिखाई दे रही हैं। इन्हें स्थानीय सागर तटों से यहां लाया गया है। इनके स्वास्थ्य की सही देख भाल यहां हो रही है और ये "सी टर्टल !" सुस्त से लगते ये नक्काशीदार सख्त पीठ के कछुए खाने के मामले में ज्यादा सुस्त नहीं हैं। दाना डाल कर देखिए, कैसे गर्दन उठा कर बिना आपको पहचाने, दाना मुंह में दबोच लेते हैं।

इधर वीडियो पर सागर के अनावृत्त रहस्यों को जनसमूह के सामने खोला जा रहा है। बर्फ के मैदानों में ठुमक चलत नंदलाल" की भंगिमा में चलते अंटारटिक के पैंग्युइन, आर्कटिक एलसिड" सिर्फ आनंदमग्न ही नहीं करते, गुदगुदाते भी हैं। यहां बर्फीले यख प्रदेशों में रहते इन प्यारे जीवों का इतिहास बताया जाता है। मछलियों व जलजीवों के जलकुंडों में हज़ारों किस्म के जीवों के साथ चार आंखों वाली मछली हमने यहीं देखी और वह

कैटफिश ? बिल्कुल उल्टी टंगी नजर आती है पर है नहीं। इसकी शक्लोसूरत ही कुछ उलट-पुलट सी है। "सी एक्वेरियम" में मछलियों के अलावा "कोरल" की हजार किस्में देखिए। स्नोबाल जैसे गुच्छा गुच्छा सफेद कोराल। मन करे कि छू लें पर छूने की हिमाकत की कि तीखें कांटों के नश्तर हाथों को लहूलुहान कर दें। मोती-माणिक, सीप शंख और किस्म-किस्म के कोरल। पानी के अन्दर रंगों का कोलाज। उस रंगीले प्रिज्म में तारों सी टिमकती, पारे सी फिसलती, नक्काशीदार रंगों के गुलाल उड़ाती हुजूम की हुजूम मछलियां "वाटरस्की लैगून" के नीचे बने मैरीन इक्वेरियम में तो संसार भर के सामुद्रिक माछ और जल जीव नि:शक तफरीह करते नजर आते हैं।

"कैपिन किड्स वर्ल्ड" में हर उम्र के लोगों के लिए चुनौती भरे खेलों का प्रबन्ध है। रिमोट कंट्रोल बोटों के साथ बच्चे खेलों का आनन्द ले रहे हैं। 'वाटर स्की लैगून" में शो चल रहा है "ब्लैकेट स्की" पार्टी। यह सी वर्ल्ड का नया आकर्षण है। संसार भर के कुशल स्कीइंग जानने वाले यहां सागर के सीने में फेनिल तूफान उठाते हैं। वीच ब्लैंकेट स्की पार्टी के युवक-युवतियां नीले लाल इन्द्रधनुषी स्विमिंग कास्टयूमों में सजे। स्कीबोट अडोल सागर को हहराते उद्वेलन से चीर देते हैं। दूर-दूर तक झागल लहरों में किल्लोल करता सागर युवा साहस पर खुश है। हंस पड़ता है। वह यौवन ही क्या जो खतरों से खेलने का दंम न रखता हो। स्टेडियम में बैठकर देखिए तो स्की बोटों के रस्से थामें स्की करती लड़कियां-लड़के पानी पर तैरते लाल पोले गुलाबों की पंखुड़ियां नज़र आते हैं।

"सी वर्ल्ड" में आपने आसमानी सवारी न की तो क्या किया? वे साइड स्काई राइड की क्यू में खड़े हो जाइए और आकाश छूते खम्भों से बंधें तारों से लटकते हिंडोलों में बैठ कर सी वर्ल्ड पार्क का आकाशी नजारा देखिए। "वे एरिया" के किनारे दूर तक सागर की नीली जलराशि का थिरकना। मुग्ध करता है। शामू स्टेडियम के पीछे दस-दस फुट ऊंची कूदें मारती व्हेल मछलियों का आतंक भरा नज़ारा देखते ही बनता है। सूरज की किरणें चूमता सागर थिरकनों से सुवर्ण रंग बिखेरता है और किलक उठता है। दूसरी तरफ "स्काई टावर" राइड में भी लोग मगन हैं। साउथ वेस्ट एयरलाइन्स के सौजन्य से बने इस 265 फुट ऊंचे टावर से सी वर्ल्ड के साथ, सागर किनारे लेटा शांत सेन डियागो शहर भी बेहद खूबसूरत नजर आता है। हरी छतरियों तले माचिस की डिब्बियों से लगते नन्हें घर, फिसलवडे सी चिकनी सड़कों का जाल और सूर्य किरनो से झिलमिलाता पानियों का संसार। जिसमें स्की पार्टी झागदार लहरें उठाती है और पिता सागर मुस्कराता है नन्हें बच्चों की शोख गुस्ताखियों पर।

सागर आकाश, जल थल के रहस्य रोमांच और मनुष्य और खूंखार जन्तुओं का प्यार भरा रिश्ता। दोस्ती का आलम। यहां भयानक भी नहीं, किलर व्हेल मछलियां भी आदमी से दोस्ती निभाती हैं। साथ खेलते, हंसते-बोलते वेजुबान जीव अपने करतबों से प्यार बांटते हैं। डाल्फिनें मन में ममता जगाती हैं। आरेंज फलेमिंगो अपने संतरी पंखों की छटा से ताल में सिंदूरी छटा बिखेरती है .....चारों ओर प्यार और दोस्ती के रंग।

हम सी वर्ल्ड से लौटे तो लगा समृद्ध होकर आए हैं "मानव तुम सुन्दरतम" के गुमान में फूले हम तो भूल ही गए हैं कि देखने वाली आंख और महसूस करने वाला मन हो तो असुन्दर और भयावह भी सुन्दर और प्यार के काबिल हो जाता है। □

कविताएं

ग़ज़लें

□ द्विजेन्द्र द्विज

अन्धेरों की स्याही को तुम्हें धोने नहीं देंगे
भले लोगो ! ये सूरज रौशनी होने नहीं देंगे ।

तुम्हारे आंसुओं को सोख लेगी आग दहशत की
तुम्हें पत्थर बना देंगे, तुम्हें रोने नहीं देंगे ।

तुम्हारे रास्तों में गोलियां हैं आग है यारो
तुम्हें वो बोझ भी आराम से ढोने नहीं देंगे ।

जमीं हैं घर के बाहर लाल मिट्टी की कई परतें
गली के हादिसे इनको कभी धोने नहीं देंगे ।

अभी भी वक्त है तुम आस्था के रुख बदल डालो ।
कोई मासूम सपना वो तुम्हें बोने नहीं देंगे ।

□

इन बस्तियों में धूल-धुआं फांकते हुए
बीती है सारी उम्र यूं ही खांसते हुए ।

कुछ पत्थरों के बोझ को ढोना था लाजिमी
जीते तो रहे लोग मगर हांफते हुए ।

ढांपे हैं हमने पैर तो नंगे हुए हैं सर
या पैर नंगे हो गए सर ढांपते हुए ।

है जिन्दगी कमीज का टूटा हुआ बटन
बिंधती हैं उंगलियां भी जिसे टांकते हुए ।

हम को कदम-कदम पे वो गहराइयां मिलीं
चकरा रही है अक्ल जिन्हें मापते हुए ।

देखो कि हो गया है अब ऐसा कुआं ज़मीर
घबरा रहे हैं लोग जिसमें झांकते हुए ।

इंसान बेज़बान-से रेवड़ तो नहीं है
ले जाएं जिन्हें वो कहीं भी हांकते हुए ।

यूं कह तो रहा था कि बचाएगा वो हमें
अक्सर दिखा है वो भी यहां कांपते हुए ।

सूरज से लोग कर रहे थे धूप का गिला
बेख्वाब खिड़कियों से सदा झांकते हुए ।

□

□ सुरेन्द्र चतुर्वेदी

जब परिन्दा उड़ान बदलेगा
देखना आसमान बदलेगा ।

हाथ गीता कुरान पे रख कर
बोल कितने बयान बदलेगा ।

गुमशुदा हो गया है आज कहां
कह रहा था जहान बदलेगा ।

जुगनुओं की मदद से सूरज का
क्या भला खानदान बदलेगा ।

तीर वो ही ना चूकने वाले
हर दफा बस कमान बदलेगा ।

कैद पिंजरे में खुद भी रह कर वो
पंछियों की जुबान बदलेगा ।

अपना चेहरा महज बदलने को
और कितने मकान बदलेगा ।

०००

गीत

□ प्रद्युम्न दास वैष्णव

बीत गई तन्हाई यादों में शाम
मिट्टी में मिल गया है मिट्टी का नाम

यादों ने लूट ली हैं सपनों की बारातें
मौसम भी बांट गया सदमों की खैरातें
एकाएक बढ़ गए हैं प्यार के भी दाम
मिट्टी में मिल गया है मिट्टी का नाम

⊙

पूजा के फूलों की प्रार्थना अधूरी है
लगता है आशा को ठेस भी ज़रूरी हैं
देहरी से लौट आए नयनों के प्रणाम
मिट्टी में मिल गया है मिट्टी का नाम

O

सौ अमावसों से घिरी दुल्हन सी बाती
भावना निरक्षर है कैसे लिखे पाती
जीवन की मधुशाला आंसुओं के नाम
मिट्टी में मिल गया है मिट्टी का नाम

O

पोर-पोर तन्हाई मरुथल-सी प्यासी है
तन अपना वैष्णव है मन भी वनवासी है
युग-युग से बिछुड़े हैं सीता से राम
मिट्टी में मिल गया है मिट्टी का नाम

□

लगता गंध तुम्हें छूकर

□ चन्द्रप्रकाश 'माया'

लगता गंध तुम्हें छूकर
आई है मेरे पास
हौले-हौले लगी जगाने
मधुर मिलन की प्यास।

तुमसे कर मनुहार चला
पुरवा का ढीठ झकोरा
आकर मेरे पास न जाने,
क्यों तन-मन झकझोरा
सूने में क्या अच्छा लगता
बाहों में आकाश।

किरण तुम्हारी हंसी चुराकर
लहर-लहर यों डोले,
सातों सागर में सतरंगा
इन्द्रधनुष ज्यों घोले
मधुबन-मधुबन नाचे तेरी
मस्ती का मधुमास।

आभा तुम्हारी सोनमुखी की,
चंदा लेकर आया
तेज तुम्हारा बड़े प्यार से
सूरज ने अपनाया
विश्वासों का संबल लेकर
रही मचलती आस।

नील-गगन में छटा तुम्हारी
मुखर हुई बिन बोले
उषा अनुपम रूप निहारे
पट घूंघट का खोले
यादों के ब्रज में मन कान्हा
लगा रचाने रास।
लगता गंध तुम्हें छूकर
आयी है मेरे पास

०००

फूल बुरांस के

□ डॉ० अशोक जेरथ

गुमसुम पहाड़,
खो गयी हरियाली
वनों की कटान से
कहां उगें फूल बुरांस के ?
कहां झूमें लहरायें देवदार
शीशे सा चटखता पहाड़
रिम झिम जब सावन आये
दूर तक नज़र
बस कच्चे पक्के घर ही घर
चीड़ देवदारों के बीच
खो गई गूंज
ग्वाले की बांसुरी की
कौन सुने परबत की बावरी पुकार
कहां उगें ? फूल बुरांस के ?

□

मैना के पंख

□ अमरजीत कौंके

टूटता रहता है बदन
शाम मेरे कमरे में
कुछ इस तरह उतरती है

दिन भर का थका हारा सूरज
जा गिरता है दूर
अन्धकार की झील में
और सारे शहर की वीरानगी
मेरे कमरे में भर जाती है
शाम अब सुरमई रंग की होकर
छतों पर नहीं उतरती
शाम तो अपने पीछे
उदास परछाइयां छोड़ जाती हैं

अब शाम को
अक्सर खुश रहने की कोशिश करता भी
मैं बहुत उदास हो जाता हूं
मुंडेर पर खड़ा होकर
गली में खेलते बच्चों को देखता
मैं भी इनकी तरह था कभी
रेत पर घरौंदे बनाता
छोटी छोटी शरारतें करता

नफ़रत, डर, ख़ौफ
और चिन्ताओं से दूर
हाँक लगा कर थक जाती थी मां
और मैं खेल में मस्त
सरूर में चूर

फिर वे खेल
मेरे हाथों में फिसल गये
जब फीस माफी की अर्जी
लिखने के अर्थ मुझे समझ पड़े
मैं कुछ किताबों में बंटा
कुछ सड़कों पर बिखरा
कुछ लोगों के घरों में गिरा पड़ा

जैसे ही मैं बड़ा हुआ
मुझे पता चला
कि बहुत भारी है
मेरे पिता के सर पर कर्ज का बोझ
जो चला आ रहा है
उसके पिता के पिता से लेकर

मुझे यह पता चला जब
तो हसीन उम्र
मेरी आंखों में मर गई
और मेरे भीतर मेरे गीतों की मैना
जो उड़ने के लिये पंख तौल रही थी
अपने नाजुक पंख लिये
अपनी उम्र से पहले ही
मेरे घर की दीवारों से
सिर टकरा टकरा कर मर गई.

मैं बहुत रोया
मैं बहुत चीखा
कि 'वो' इस मरती हुई मैना को रोके

इसके गीतों के बिना
मेरा संसार बहुत सूना हो जाएगा

लेकिन वे तो
अपने अन्धेरों में ही
अस्त व्यस्त थे
मेरे भीतर मर रही मैना का
किसे फिक्र होना था

फिर मेरे पिता की
उदास आँखों ने
निगल लिया मेरा सारा क्रंदन
मैंने उस मृत मैना के
पंख सहेज लिये बस
और घर की दीवारों में चिन डाले

लेकिन उदास संध्या में
और खामोश रातों में
वे पंख-नहीं मालूम कहां से
उड़कर आते हैं
और मेरे भीतर
तिनका तिनका बिखर जाते हैं

यही क्षण होते हैं
जब मैं खुश रहने की कोशिश करता भी
बहुत उदास हो जाता हूं

यकीन

इस मौसम की
बदसूरती के खिलाफ
मैं इतना करूँगा

कि मैं उखाड़ कर फैंक दूंगा
गमलों में उगे तुम्हारे कैक्टस
और बोऊंगा इस मिट्टी में

सूरजमुखी के बीज
तुम देखोगे
कि इसी मिट्टी में से
जहां उगे थे तुम्हारे कँटीले कैक्टस
वहीं उगेंगे सूरजमुखी
जो इन अन्धेरी रातों में देंगे
चेतना के बन्द दरवाज़ों पर दस्तक

इस मौसम की
बदसूरती के खिलाफ मैं इतना करूंगा
कि मैं घर में पालूंगा एक कोयल
जिस की आवाज़
टकराएगी इन काली खबरों से
और यकीन है मुझे
लौटेगी विजयी हो कर

इस मौसम की
बदसूरती के खिलाफ
मैं अपने बच्चों के
होठों पर बांसुरी
और हाथों पर पुस्तकें रखूंगा
मैं बस इतना करूँगा

□

तुम्हारे होने तक

□ मोहन सपरा

तुम्हारे होने तक
मैं सिमट जाता हूं
पीछे नहीं आगे देखता हू
समय का दिपदिपाता चेहरा तलाशता हूं,
तुम्हारे होने तक
एक राजमार्ग फैला होता है
—मेरे सामने
और साहस आकार लेता

उफन-उफन पड़ता है
अन्दर-बाहर,
शक्ति इतनी कि
इतिहास को चक्राकार घुमा दूं
कविता से
दावानल भड़का दूं ।

तुम्हारे होने तक
कुछ भी तो अपरिचित नहीं होता,
पच्चीस वर्षों से
साये तक
जहरीले कर दिये गये
आवाजें कुन्द हो गईं
अनगणित चक्रव्यूह रचे गए
फिर भी हम उसे
भेद निकले

दिन-रात की तरह
नियमित,
आंधी-तूफान की तरह
क्रूर, पर ईमानदार,
सूर्य-चांद की तरह

कर्म कर-कर्त्तव्यनिष्ठ
पर कठोर ! सच की तरह ।
सच मानो ।
तुम्हारे होने तक
एक गाथा है

—पुरानी
समय के पृष्ठों में लिपटी
प्यार के सूरज से दमकती-चिलकती
काले अन्धेरे से बेखबर
कदम-कदम पर दरवेश बनाती
मेरे इर्द-गिर्द
ध्वनि की तरह लिपटी
—गमक रही है

और मैं
तुम्हारे सामने खड़ा
स्वयं को
तीसरा नेत्र बनता देख रहा हूं । □

औरतें

□ डॉ० सरबजीत

गर्भवती औरतें
हांफती चीखती चिड़िया को देख
पूछती हैं उनकी हाय तौबा का मतलब
न पता चलने पर
हांफने लगती हैं खुद
उन्हें नहीं पता चिड़िया के बच्चों के बारे में कुछ भी
पर वे मांगती हैं दुआएं
कि चिड़िया के बच्चे सुरक्षित हों जहां भी हों।

□

अपने ही अजन्मे हिस्सों को
देखती हैं औरतें
जन्मे बच्चे को निहार
अपने माथे से बेहतर माथा
अपनी आंखों से बेहतर आंख
अपने हाथों से बेहतर हाथ
अपने पांवों से बेहतर पांव
छोटी-छोटी सम्भावनाओं को
यूं हुनर से पिरोती हैं औरतें
और इस हुनर के सहारे
कायम रहती है बेहतरी
पूरी दुनिया में

वितस्ता साक्षी रहना

□ निदा नवाज़

साक्षी रहना वितस्ता
तुम साक्षी रहना
मेरी आंखों की स्याही
और होंठों की लालिमा
बह गई तुम्हारे कल-कल नीले पानियों में
मेरी संतानों के सिर कट गये
धान की पकी फसलों की तरह

वितस्ता तुम साक्षी रहना
मेरी छाती पर उगे चिनार झर गये......
जो मौन आमंत्रण थे
हरित-शीत छायाओं का

वितस्ता तुम साक्षी रहना
मेरी बेटियों के सुन्दर मुख जो
सेबों की सुर्खी से होड़ लेते थे
वे धुआं हो गये हैं

आकाश तुम्हारी नीली गहराइयों में
डूबा रहता था मस्त
अब वह आग की सुर्खियों में छिपा रहता है
अब उसे सूरज के मायने भूल गये हैं

वितस्ता तुम साक्षी रहना
मेरी घाटी अब सिर्फ
आवाज़ें सुनती हैं
क्योंकि वह अपने वजूद की
पहचान खो चुकी है
एक पगली औरत की तरह
जिसे अब किसी आवाज़ के साथ
कोई सरोकार नहीं रह गया है
अब वह सिर्फ रोती है और हंसती है
पर उसका अर्थ नहीं जानती

□

आदत डालो

□ रामकृष्ण धर

बैसाखी छोड़ कर जीने की
आदत डालो
खो गया जो उसे
भूल जाने की
आदत डालो,

आंसू छलकते हैं अक्सर आंखों से मेरे दोस्त
खुशी में ग़म में भी
उनको गिरने से बचाने की
आदत डालो

न करो यों ही एतबार, एतबार सब पर
एतबार को
बस एतबार बनाने की
आदत डालो

छिपाना चाहते हो जो
वह है चेहरे पे नुमां
असलियत खुद से छुपाने की
आदत डालो

दोस्त-दुश्मन में कोई फर्क नहीं लगता
यारो
यही सच है ? तो
जीने की
आदत डालो। □

रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं
इनमें सम्पादकीय सहमति अनिवार्य नहीं।

संवाद

महत्त्वपूर्ण साहित्य हाशिये में डाल दिया गया

□ डॉ० प्रभाकर श्रोत्रिय

वरिष्ठ आलोचक, विविध विधाकार एवं भारतीय भाषा परिषद् (कलकत्ता के निदेशक) डा० प्रभाकर श्रोत्रिय से राजेन्द्र परदेसी की बातचीत।

— आपके व्यक्तिगत जीवन में कुछ विशेष प्रेरणाप्रद हो तो पहले हमारी युवा पीढ़ी उसे जानना चाहेगी, जैसे जहां आपका जन्म हुआ वहां का वातावरण कैसा था? आपको लिखने की प्रेरणा कहां से मिली, आपकी प्रथम रचना कब और कहां प्रकाशित हुई। इत्यादि

—मध्य प्रदेश का मालवा क्षेत्र जावरां मेरी जन्मभूमि है, मेरे पिता संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे, बहुत छोटे में पिता नहीं रहे। आर्थिक अभाव के चलते मुझे किशोरावस्था में ही नौकरी करनी पड़ी। परिवार के संस्कार और उज्जैन आने पर वहां के परिवेश के कारण संभवत: यों लेखन प्रारम्भ हुआ। छठी कक्षा से ही कविता लिखने लगा था। बी०ए० तक कई कविताएं, नाटक, उपन्यास, काव्य आदि लिखे थे। इन्हें प्राय: प्रकाशित नहीं कराया। फिर जाने कैसे समीक्षाएं लिखना प्रारम्भ हुआ। वीणा में वर्षों सामयिकी कॉलम लिखा। मुझे लगा कि मेरी समीक्षाएं अधिक पसंद की जा रही है। शायद यही कारण रहा कि इस विधा को मैंने अपनाया. बाद में अन्य विधाओं में लिखना पूरी तरह बन्द हो गया। 1961 में मुझे मेघदूत पर लिखे लम्बे निबन्ध पर स्नातकोत्तर स्तर की अखिल भारतीय प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार मिला। सन् 1971 में मेरी पहली आलोचना पुस्तक 'सुमन: मनुष्य और स्रष्टा' निकली। जिसे हिन्दी आलोचना में उल्लेखनीय माना गया, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डॉ० भगवत शरण उपाध्याय, हरिवंश राय बच्चन, आचार्य विनयमोहन शर्मा जैसे अनेक विद्वानों ने इसकी खूब प्रशंसा की। इससे बल मिला। फिर तो आलोचना के क्षेत्र में निरन्तर पुस्तकें निकलने लगीं। यह क्रम जारी है। सन् 1987 में एक नया मोड़ आया,

संयोगवश एक पौराणिक कथा मिली। मैंने उस पर नाटक लिखना प्रारम्भ किया। 1989 में वह 'इला' नाम से प्रकाशित हुआ। अपेक्षा से अधिक उसे सराहना मिली, पुरस्कृत हुआ, मंचन के लिए सहायता मिली, इसके बाद दूसरा नाटक 'सांच कहूं तो' प्रकाशित हुआ, तीसरा प्रकाशनाधीन है। इसका यह अर्थ नहीं कि मैंने 'आलोचना' लिखना छोड़ दिया है. आलोचना मेरी मूल विधा है। हिन्दी में गहरे, प्रबुद्ध पाठकों को मेरी आलोचनाएं पसन्द आई हैं। 'कविता की तीसरी आंख' 'रचना एक यातना है', 'कालजयी है कविता', 'संवाद', 'जयशंकर प्रसाद की प्रासंगिकता' जैसी अनेक पुस्तकों को हिन्दी में मान मिला है, 'कविता की तीसरी आंख' का तो अंग्रेज़ी में भी अनुवाद हुआ है, ऐसी स्थिति में इस ओर से विमुख होने का सवाल ही नहीं है।

—एक सृजनशील साहित्यकार की हैसियत से सृजन के बारे में आपका मौलिक विचार क्या है?

—सृजन के बारे में मैंने अपनी पुस्तकों में प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से विचार प्रकट किए हैं, उन्हें सूत्र रूप में कहना सम्भव नहीं है, इनमें से कितने विचार मौलिक, और कितने नव-व्याख्यायित हैं, कह नहीं सकता, वैसे किसी मौलिकता का दावा मैं नहीं करता। संक्षेप में कहूं तो मैं रचना में स्वाधीनता का पक्षधर हूं। साहित्य किसी वैचारिक धड़े का बंदी बने यह मैं लेखकीय उद्‌भावना, अग्रगामिता और स्वतन्त्र चिंतन के लिए घातक मानता हूं। लेखकीय स्वाधीनता, विचारहीनता, या पक्षधर हीनता का प्रतीक नहीं है। उसे श्रेष्ठ के चयन की स्वाधीनता कहना चाहिए। लेखक का अपना दृष्टिकोण और विचार उसके अन्वेषण का प्रतिफल होना चाहिए किसी के आदेश-निर्देश का नहीं। मैं रचना में कथ्य और शिल्प का सामंजस्य, समकालीन जीवन में रचना की सार्थक उपस्थिति और उसमें दीर्घकाल तक प्रभावित करने की शक्ति, लोकान्वेषी चेतना, संवेदनशीलता, दृष्टि सम्पन्नता की अपेक्षा करता हूं।

—साहित्य-सर्जन और साहित्यालोचन को कई लोग दो अलग और परस्पर विरोधी प्रवृत्तियां मानते हैं, परन्तु रागात्मक और बौद्धिक तत्वों का यह समन्वय आप में कैसे सम्भव हुआ?

—मैं सृजन और आलोचना को प्रतिद्वन्द्वी नहीं मित्र मानता हूं, जो लोग ऐसे मित्र की तलाश में रहते हों जो उनके गुण-अवगुण, बुद्धिमानी और मूर्खता, संवेदना और क्रूरता सबकी प्रशंसा करें, उन्हें अवश्य ही 'आलोचना' शत्रु दिखाई देगी। इसी दृष्टि से आलोचना को लोगों ने रचना को विलोम या प्रतिद्वन्द्वी माना है। क्या कोई आलोचक रचना को आत्मसात इसलिए करता है कि वह उससे युद्ध करे? ऐसा करने वाले लोग वास्तव में आलोचक नहीं किसी विरोधी दल के राजनैतिक सदस्य होंगे। दूसरी बात यह है कि रचना की तरह बहुत सी आलोचनाएं भी कूड़े का ढेर होती हैं; यहां भी त्रुटियां और अविवेक होता है। ऐसी तमाम चीज़ों को अलग करके जैसे हम श्रेष्ठ रचना पर बात करते हैं। वैसे ही श्रेष्ठ आलोचना पर बात करनी चाहिए। मैं नहीं समझता कि ऐसी आलोचना की रचना से कोई प्रतिद्वन्द्विता होती है, उल्टे मैं यह कहूंगा कि सच्ची आत्मीयता का ही परिणाम सच्ची आलोचना होती है, फिर वह आपकी त्रुटियों को कितना ही बेनकाब क्यों न करती हो? मेरे एक लेख में अज्ञेय की तीखी आलोचना थी, वह उन्होंने 'नया प्रतीक' में प्रथम पृष्ठ पर

छापी थी। ऐसे सहृदय और ऊंचे किस्म के लेखक ही आलोचना का सच्चा मूल्यांकन कर सकते हैं। इसी अर्थ में आलोचना भी सार्थक होती है। रचना जीवन की आलोचना या प्रतिरूप है तो आलोचना रचना में ग्रहण किए गये जीवन की सार्थकता को रचना में परखती है। इसके अलावा बहुत ही सर्जनात्मक विशेषताओं अभावों को भी जांचती है, न तो कोई सर्जक, जीवन को संवेदन बुद्धि, विवेक, आदि के बिना परख सकता है न कोई आलोचक इनके बिना कृति को।

सर्जनात्मक आलोचना आमतौर पर रूढ़िवादी, अकादमिक और बंधी बंधाई आलोचना पद्धति और मानदंड के विरुद्ध गतिशील, संवेदनशील, देशकाल के प्रति सजग-सचेत और भाषा की सृजनशीलता से सम्पन्न आलोचना है। सच तो यह है कि आलोचक मूलतः सर्जक होता है। परन्तु उसकी सर्जनात्मक अभिव्यक्ति की विधा सर्जनात्मक विधाओं से अलग होती है। आलोचना के लिए विशेष प्रकार का अनुशासन, संयम, विवेक, तटस्थता, अध्ययन, मनन की आवश्यकता होती है। उसकी अभिव्यक्ति शैली या सम्भव कल्पना की उड़ान और भाषा की बहुमुखी सृजन-धर्मिता को अपने भीतर संयत करती है। भावुक, प्रभाववादी, पक्षधर, कविता जैसी भाषा में लिखी आलोचना को सर्जनात्मक आलोचना मानना सर्वथा गलत है। असल में सिद्धान्त, विचार, जीवन, रचना आदि सभी दिशाओं को अन्वेषित करती हुई ऐसी भाषा में लिखी आलोचना जो पाठक पर अनावश्यक बोझ न डालते हुए, अपने रचनात्मक आकर्षण में बांधती भी हो और अन्वेषण तथा सोच के लिए प्रेरित भी करती हो—सर्जनात्मक आलोचना है। यह बिना कहे, साफ दिखाई देती है।

—आपके आलोचक के निर्माण में किन-किन तत्वों और व्यक्तियों का विशेष हाथ रहा? किस आलोचक ने आपको सर्वाधिक प्रभावित किया और क्यों?

—प्रभावों का कोई स्पष्ट ब्यौरा नहीं दे सकता। मैंने भारत के प्राचीनतम साहित्य से आधुनिकतम साहित्य को यथा सम्भव पढ़ने की कोशिश की है, पाश्चात्य लेखकों को भी पढ़ा है और जाने कितने-कितने स्रोतों से जाने क्या-क्या लिया है? कोई भी इसका ब्यौरा नहीं दे सकता, वह तो आप जैसे मर्मज्ञ ही आलोचना को पढ़ कर बता सकते हैं कि कहाँ कितनी नवीनता है। मैंने कोशिश की है कि पारम्परिक आलोचना, हिन्दी की आलोचना और समकालीन आलोचना के सम्पर्क में रहूं। नहीं कहता कि इन सबका महत्वपूर्ण मैंने पढ़ा है, इतना ही कह सकता हूं कि महत्वपूर्ण को नज़रअन्दाज करने की कोशिश नहीं की है, मेरी सीमाएं हैं—समझ की भी और अनुभव की भी, उन्हें जानने की कोशिश करता हूं, हिन्दी आलोचकों में मुझे आचार्य शुक्ल, आचार्य द्विवेदी, आचार्य वाजपेयी, डॉ० राम विलास शर्मा, डॉ० नामवर सिंह, अज्ञेय, निर्मल वर्मा, और अनेकानेक लेखक अपनी ओर खींचते हैं, समकालीन आलोचकों का नाम जानबूझ कर छोड़ना चाहूं तब भी मलयज, शाह, नंद किशोर आचार्य, श्रीराम वर्मा, मधुरेश, जयदेव तनेजा जैसे बहुतेरे लेखकों के नाम जुबान पर आते हैं। कितने ही ऐसे सर्जक हैं जिन्होंने रचना के साथ आलोचना लिखी है (परम्परा में और वर्तमान में) उनके भी महत्व से इन्कार नहीं कर सकता। प्रसाद हैं, जैनेन्द्र हैं, महादेवी हैं, धर्मवीर भारती हैं और कई हैं। नाम लेने से बचना इसलिए चाहता था कि तात्कालिक विस्मरण और प्रमाद में बहुत से नाम छूट सकते हैं—इस तरह बेहतर लेखकों की अवमानना होती है। इसलिए यह सूची काफी अधूरी समझें, उधर लीविस, स्टीफन स्पेंडर, रिचर्ड्स जैसे अनेक पाश्चात्य नाम भी याद आते हैं।

—आज के युग में सर्जक और आलोचक के बीच की खाई निरन्तर बढ़ती जा रही है. आपके विचार में यह खाई कैसे पट सकती है ?

—सर्जक और आलोचक के बीच की तरह खाई बढ़ती रहेगी, अगर लेखक आत्ममोह से ग्रस्त होगा और आलोचक पक्षपाती, जड़ और अहम्मन्य। यदि आलोचना और खासकर ईमानदार और दृष्टि सम्पन्न आलोचना के प्रति लेखक का सम्मान और स्नेहभाव, सहिष्णुता हो और आलोचक में ईमानदारी, संवेदनशीलता, अभिव्यक्ति की मार्मिकता और तार्किकता हो तो दोनों के बीच की खाई निश्चय ही कम होगी, परस्पर सम्मान और विश्वास से खाई पटती है; परन्तु इनकी रक्षा भी स्वयं में ही करनी पड़ती है।

—आलोचक को ऐसी कृति का मूल्यांकन करने से सामान्यतः बचना चाहिए जिससे अभिव्यक्त जीवन-दर्शन से उसका तात्त्विक मतभेद हो ? इसमें आप क्या करेंगे ?

—मुझे नहीं लगता कि विरोधी जीवन-दर्शन से बचना चाहिए। उसे भी समझना चाहिए, ताकि उसका विरोध अपने भीतर प्रामाणिकता प्राप्त करे और यदि गहराई में जाने लगें कि हम ही गलत अड़े हुए हैं तो परिमार्जित करें। विकास की यही शैली है। साहित्य के मतवाद राजनीतिक दलबंदी नहीं है जिसमें गुण-दोषों की परीक्षा नहीं तयशुदा दलीय प्रतिक्रिया होती है। इसीलिए उनका कोई असर नहीं होता विरोधी विचारों से संवाद करना, उनसे टकराना, उनके अच्छे तत्वों को ग्रहण करना सभी कुछ जरूरी है: हिन्दी में पिछले दिनों जो खेमेबाजियां हुई उनके कारण बहुत-सा महत्वपूर्ण साहित्य हाशिये में डाल दिया गया और घटिया साहित्य को झंडे की तरह फहराया गया। कुल मिला कर यह हमारे भाषा-साहित्य को दरिद्र और पाठकों को विपन्न और दिग्भ्रांत बनाता है।

—आप दीर्घकाल से साहित्य के सृजन में संलग्न है, प्रभूत सृजन भी किया है। आपके साहित्य का जो मूल्यांकन हुआ है या हो रहा है, उससे आप कहां तक संतुष्ट हैं ?

—यों तो आदमी को जितनी प्रशंसा मिले वह संतुष्ट नहीं होता, मैं मानता हूं कि मुझे भले ही कम लोग जानते हों, परन्तु थोड़े से मर्मज्ञ लोगों और रचनाकारों की सराहना या स्वीकृति कम महत्वपूर्ण नहीं है, जो पढ़ेगा या पढ़ना चाहेगा—वही तो आपको जानेगा और उसी की स्वीकृति तो महत्व रखेगी। मेरी ओर उस परिणाम में लोगों ने ध्यान नहीं दिया, जिस परिणाम में मैंने लिखा है। मेरी वैसी चर्चा भी नहीं हुई, जैसी इतना (और कुछ लोगों की राय में स्तरीय) लिखने पर होनी चाहिए। परन्तु जो कुछ मूल्यांकन या स्वीकृति मिली है वह प्रेरक है, मैं रचना क्षेत्र में स्वाधीनता का पक्षधर रहा हू, स्वयं भी हूं, इसीलिए दलों से समर्थित सराहना या स्वीकृति से वंचित होना मेरी नियति है, सच बात तो यह है कि स्वाधीनता जोखिम से भरी होती है। इसका 'मूल्य' हर उस व्यक्ति को चुकाना होता है जो स्वाधीन रहना चाहता हो, तो इसका क्या गम। काल निरवधि है और पृथ्वी बहुत बड़ी है —यह रचनाकार को ही नहीं आलोचक को भी कहना पड़ता है। रचनाकार चीख-चीख कर कहता है जबकि आलोचक अपनी विधा की प्रकृति और संयम के कारण इस मामले में चुप रहता है। आलोचना और लेखन के क्षेत्र में जब आप देखें कि कई लोग आपकी पंक्तियां, अनुच्छेद, विचार, विचार प्रक्रिया, स्टेटस ले उड़ें और आपका संदर्भ दिए बिना; तो क्या आपको इसकी खुशी नहीं होगी कि लोग आपका नाम लिए बिना भी आपको अपना व्यक्तित्व चमकाने का जरिया बना रहे हैं ?

—आज के गद्य-पद्य लेखन के बारे में आपकी क्या धारणा है ?

—लोग सार्थक और अच्छा लिखें, प्रतिभाओं को सही अवसर मिलें, साहित्य के क्षेत्र में अनवरत साधना का माहौल बने और लेखन पर तरह-तरह के बाहरी-भीतरी दबावों प्रत्याक्रमणों के खिलाफ लेखक संघर्ष करे तो मैं समझता हूं बेहतर परिणाम होंगे ही ।

—साहित्यकारों को दिये जाने वाले साहित्यिक पुरस्कारों पर आपकी क्या प्रतिक्रिया है ?

—समय से पूर्व पुरस्कार लेखक के लिए घातक है और जीवनांत के क्षणों में निरर्थक। एक परिपक्व लेखक को पुरस्कार देना उचित होता है उससे अन्य लेखकों को प्रेरणा मिलती है। लेखक का आत्मविश्वास मजबूत होता है। हां पुरस्कार पक्षपातहीन हों तो उनकी साख भी बढ़ेगी और लेखक की भी।

—अपने अनुभवों के आधार पर युवा पीढ़ी को साहित्य-सृजन के लिए आप क्या संदेश देना चाहेंगे ?

—नई पीढ़ी को संदेश देने का मतलब है अपने को पूर्ण समझ लेना। अभी तो मैं अपने को ही खोज रहा हूं। संदेश देने जैसी महानता मुझमें नहीं। नई पीढ़ी खुद अपनी प्रतिभा, शक्ति और साधना से आगे बढ़ेगी और अपना संदेश स्वयं तलाशेगी। □

कहानियां

तह के नीचे आदमी

□ महाराज कृष्ण संतोषी

मैंने सोने की असफल कोशिश की। टी. वी., किताब और औरत इनमें से किसी ने भी मुझे नार्मल नहीं किया। मैं अब भी बहुत तनाव महसूस कर रहा था। सारी खुमारी काफूर हो चुकी थी।

कितनी मुद्दत के बाद आज मैंने थोड़ा-सा नशा किया था। वह भी अगर मुकुल नहीं मिलता। मुकुल मेरे कालेज के दिनों का दोस्त था। कालेज से निकलते ही हमारे बीच मित्रता की धार सूख गई थी। सम्पर्क भी नाममात्र को ही रह गया था। आज अकस्मात वह मुझे ज्यूल चौक में मिला और भीड़ में से फुटपाथ की तरफ खींच ले गया। मैं काफी डर गया था। पलभर को लगा था कि जैसे किसी मुजाहिद ने पकड़ लिया हो। मैंने मुकुल को पहचाना नहीं था। उसका जो व्यक्तित्व उभर आया था, वह पुराने दिनों के मुकुल से कितना भिन्न था। आश्चर्यचकित होने की हद तक भिन्न। उसने मेरी गाल पर हल्की-सी चपत लगाते हुए कहा —

'तुम्हें क्या हुआ है ! मुझे पहचाना नहीं। मैं मुकुल हूं—मुकुल कौल।" मेरे भीतर से एक अनसुनी चीख निकल गई थी।

"यह भी खूब रही" मैंने हैरानी के स्वर में कहा। मैंने उसके कंधे पर बांह रख कर घेरते हुए कहा—इस से वह काफी भावुक हो उठा था। पल भर में पुरानी विस्मृत दोस्ती जीवित हो उठी थी।

"चलो, कहीं बैठ कर बातें करते हैं !" उसने कहा।

"हां, क्यों नहीं। काफी हाऊस चलें।" मैंने उत्साहपूर्वक कहा।

"बुलशिट ! काफी हाऊस भी कोई जगह है । बॉर चलेंगे ।" मेरी स्वीकृति की परवाह किए बगैर ही उसने एक थ्री व्हीलर वाले को बुलाया और उसे रेजिडंसी रोड की तरफ चलने को कहा । रास्ते में हमारे बीच काफी हंसी मज़ाक चलता रहा ।

"क्या पियोगे ?" उसने मुझ से पूछा ।

"कुछ भी" मैंने जवाब दिया ।

"स्कॉच ठीक रहेगी न ?" उसके स्वर में अभिजात्य था ।

"क्यों नहीं" मेरे स्वर में मेरा पैसे का पतला होना साफ झलक रहा था । उसने स्कॉच का आर्डर दे दिया और साथ में तंदूरी चिकन का भी । कुछ समय मौन में बीता ।

"तुम क्या अभी टीचर ही हो ?" उसके इस अप्रत्याशित प्रश्न से मैं चौंक गया ।

"हां ! मैंने धीमे स्वर में कहा ।

"और तुम ?" मेरे यह पूछने पर वह हंसा । उसने जेब से सिगरेट का पैकट निकाला और एक सिगरेट सुलगा लिया । सिगरेट पीते हुए वह दार्शनिक अन्दाज़ में कहने लगा ।

"मेरा क्या..... आज इस नौकरी में तो कल उस नौकरी में । वैसे कुछ ही महीने पहले मैंने डिप्टी सेल्स मैनेजर की पोस्ट से रिज़ाइन दिया है ।"

"क्यों, क्यों" मेरे स्वर में घोर आश्चर्य था ।

"क्योंकि मुझे और अच्छा काम मिल गया है ।"

"क्या काम ?"

"दूरदर्शन के लिए सीरियल बनाने का ।" उसके स्वर में अभिमान था ।

"लेकिन तुम तो कला-साहित्य को फिज़ूल समझते थे ।" मेरे स्वर में अज्ञानता थी ।

"तुम भी सूफ़ियाना हो यार !! सीरियल बनाना अब कला-साहित्य से ज्यादा व्यापार हो गया है । धन और यश अर्जित करने का बढ़िया माध्यम ।" मैं चुप रहा, इस बीच हम दो-एक पैग पी भी चुके थे । मैं हल्का सा सरूर भी अनुभव करने लगा था ।

☐

उसने और स्कॉच का आर्डर दिया । मैंने मना करना चाहा तो उसने नेक फलसफाना अन्दाज़ में कहा ।

"जिन्दगी में हर चीज का भरपूर आनन्द लो । थोड़े से ही तृप्त होने की आध्यात्मिक आदत छोड़ो" मैंने खुमारी में हामी भरी ।

नशा अब उस पर काफी गहराने लगा था । मैंने तीसरे गिलास के बाद ही गिलास उलट दिया था । उसने मेरे इस आत्मसमर्पण पर मज़ाक भी किया था कि मैं चरमसुख में विश्वास नहीं करता । नशे में अब वह काफी बड़बोला हो गया था । अपनी ऊंची पोज़ीशन, स्टेटस, कार-कोठी और बैंक बैलेन्स को आहत कर देने वाली सीमा तक बयान कर चुका था । मुझे महसूस होने लगा था कि वह जानबूझ कर मुझे ज़लील कर देना चाहता है ।

शायद वह मेरे आत्मविश्वास को रूई की तरह धुन कर उसे आकाश में तैरते हुए देखना चाहता था। और मैं था कि आर्थिक दरिद्रता का दंश शरीर के भीतर कहीं अनुभव करने लगा था।

पीने के लिये अब उसने फिर मंगवा ली थी। उसकी हालत देखकर मैंने उसे रोकना चाहा।

"चुप करो साले टीचर ! तुम क्या समझोगे कि स्कॉच का मज़ा क्या होता है।" उसने पियक्कड़ आदमी के स्वर में मुझे लताड़ा। मैं चुप रहा। इतने वर्षों के बाद किसी पुराने दोस्त से मिलने का सुखद संयोग अब मातम और पछतावे में बदल चुका था। वह अब भी घूंट-घूंट पी रहा था और मैं सुनने का फर्ज़ अदा कर रहा था।

"..... तुम क्या हो......क्या किया है तुमने अब तक......? वही टीचर के टीचर रहे ना......मैंने जीवन को भोगा है......खूब ऐश किए हैं मैंने......मेरे पास किस चीज की कमी है... ..कार है......कोठी है... लड़कियां मुझ पर मरती हैं .. और तुम......क्या तुमने अपनी पत्नी को छोड़कर किसी दूसरी औरत से बात तक की है... ..? और वह तुम्हारी औरत......कैसी गमचीज है ...तुम से ही बंधी हुई है ... ।"

मैंने मुकुल को और कहने से रोका। सिर्फ इतना कहा।

"बहुत दोस्ती हो गई। अब चलें ?"

बार लगभग खाली हो चुका था और बंद होने की तैयारी में था। बैरा बिल कब का ला चुका था। मगर मुकुल था कि अब भी पीने की ज़िद कर रहा था।

"साहब बिल।" ठाठदार बैरे ने स्मरण कराया। कम रोशनी में मैं बिल को पूरा देख ही नहीं पाया था। इस बार मैंने अनचाहे ही बिल की तरफ देखा। उस पर लिखे अंकों ने मुझे घबरा दिया। मैंने मुकुल को अपनी मस्ती से जगाना चाहा लेकिन वह था कि जैसे लुढ़क गया था। पास खड़े उस बैरे ने मुझ से पूछा।

"साहब क्या आप इसके दोस्त हैं ?"

"हां !"

"क्या आप नहीं जानते ?"

"क्या नहीं जानता" मैं अचानक बोल पड़ा।

' यही कि यह अक्सर अपने पुराने मित्र-परिचितों को यहां लाकर उनसे पीता है और खूब मस्ती करता है। इस के पास बिल चुकाने के लिए कभी पैसे नहीं होते।"

"क्या.... ?" मेरे मुंह से जैसे एक चीख निकल गई। बिल पर लिखे अंक इस समय मेरी आंखों में गहरे गड़ रहे थे।

"मैं सच कहता हूं साहब।" बैरे के स्वर में सहानुभूति थी।

"और कार, कोठी, बैंक बैलेंस......।"

"सब हवा-महल है" मेरा दिल जैसे धड़कना बंद कर चुका था। लेकिन इस संकट से

किसी न किसी तरह उबरना ही था। मैंने आज ही एक छात्र की दी ट्यूशन फीस से बिल चुका दिया। मैंने मुकुल की तरफ देखा तो वह मुझे सचमुच दयनीय लगा। मैंने उसे सहारा देते हुए बाहर सड़क तक आने में सहायता दी।

"अब तुम कहां जाओगे ?" बाहर सड़क पर मैंने उसे पूछा।

"होटल अशोक !" उसने लड़खड़ाते स्वर में कहा। मैं उससे दूर अलग जा खड़ा हुआ और पता नहीं क्या सोचने लगा। शायद मैं उस तह के नीचे आदमी के बारे में ही सोचे जा रहा था......।

......और फिर अचानक मुझे लगा—कि मैं अपने आस-पास घिर आये अदृश्य अन्धेरे से निजात पाने के लिए रोशनी से नहायी सड़क की ओर मुड़ने लगा हूं......। □

भाषांतर
उर्दू कहानी

कैपस्यूल

□ जीलानी बानो

···आज यह कौन-सा दिन आ गया था।

आज जब मिसेज़ सुबहानी ने अपने चेहरे पर फरिश्तों जैसी अलौकिक मुसकराहट बिखेर कर सलमा से कहा था, "बहुत-बहुत मुबारक मिसेज़ खालिद! लेकिन बच्चे के जन्म पर मिठाई खिलाना न भूलिएगा..."कई बार अचानक टूटने वाली खुशी भी असहनीय यातना की तरह दिल को डस लेती है। सलमा के दिल को भी धक्का-सा लगा और वह कुछ न कह सकी।

आज यह कौन-सा दिन आ गया था।

सलमा तो दिन और तारीखें गिनते-गिनते थक चुकी थी। एक-एक दिन पहाड़ की तरह गुज़रता था। एक-एक घंटा, एक-एक क्षण दूभर हो गया था। वह चलते-चलते हांफने लगी थी। घर की सफाई भी हो जाती। खालिद के साथ सैर-सपाटा भी होता। सहेलियों के साथ ढेरों शॉपिंग भी करती। फिर कालेज में पढ़ा कर भी आ जाती, मगर ये सब काम बड़ी जल्दी खत्म हो जाते थे, और फिर रात आ जाती—सुनसान, खामोश और भयानक रात उसके चारों ओर फैल जाती और वह अकेली रात की भयंकर गुफा में डूबती चली जाती। दूर आउट-हाउस में नन्हा-सा बच्चा रोता और आया उठ कर दो महीने के बच्चे को धपा-धप धप्प मारना शुरू कर देती।

"मर जा मनहूस! हर साल चले आते हैं, जोंक बन कर मेरा खून चूसने!"

मगर आज यह कौन-सा दिन आ गया था, जब मिसेज़ सुबहानी ने अपने चेहरे पर फरिश्तों जैसी मुसकराहट बिखेर कर सलमा से कहा था, "लीजिए मिसेज खालिद! यह आपकी दवाएं हैं। हां, यह कैपस्यूल हर रोज पाबंदी से जरूर खाइए। क्योंकि आपका जो

केस है, उस में अबार्शन का खतरा रहता है।...और सलमा ने मुट्ठी में कस कर उस शीशी को थाम लिया—अबार्शन का खतरा...आगे की भयानक गुफा...दिन का पहाड़...हर-हर चीज़ सामने से यों हट रही थी, जैसे टेक्नीकलर पिक्चर में दृश्य बदलता रहता है।

फिर सामने कार्निस पर रखे हुए रंगीन क्लाऊन के कहकहे जैसे सारे कमरे में गूंज रहे थे।

□

सलमा ने कितनी बार सोचा था, कि कभी किसी डाक्टर ने ऐसी खुशखबरी सुना दी, तो वह क्या करेगी और हर बार ऐसी बात सोच कर वह खुशी से कांपने लगती थी, मगर आज जब यह सपना इतने सुंदर रंगों में डूब कर हकीकत बना खड़ा था, जो वह चुपचाप बैठी थी। फिर वह अपने कांपते हुए बदन को मसहरी पर गिरा कर घड़ी देखने लगी। नौ बज कर दस मिनट। ठीक नौ बजे मिसेज़ सुवहानी ने उसे यह खुशखबरी सुनायी। उस क्षण तक पहुंचने में कितनी सदियां लगी हैं। यह सपना सलमा ने न जाने कब से देखना शुरू किया था।

एक इंसान का बनना कितना बड़ा पड़ाव है। न जाने कौन-कौन से तथ्य उसकी पूर्णता में दाखिल होते हैं। एक इंसान, जो सृष्टि के मेन-स्विच का मालिक होता है, जो सितारों के दीये बुझा सकता है, जो आधी रात को सूरज उतार लाता है। उस असाधारण इंसान को पैदा करना कोई आसान काम थोड़े ही है...अचानक सलमा को अहसास हुआ कि वह बेहद वज़नी हो गयी है। बहुत ही महत्वपूर्ण हस्ती बन चुकी है।

उसने सिरहाने से कैपस्यूल की शीशी उठायी और एक कैपस्यूल हथेली पर रखा। सफेद कैपस्यूल के अंदर सुर्ख-सुर्ख नन्हें-नन्हें कण झिलमिला रहे थे। छोटी-छोटी बूंदें। तुच्छ-से कण! मगर यही नन्हें-नन्हें कण मेरे आगे के सारे खतरे हटा देंगे...यह मुझे एक कैपस्यूल में सुरक्षित कर देंगे।

□

सुबह को आफिस जाते समय खालिद ने पूछा, "तुम ने वह कैपस्यूल नहीं खाया?"

खालिद स्वयं बड़ी उत्सुकता और अरमान के साथ एक बच्चे के आगमन की प्रतीक्षा में था। वह बच्चा, जो उसे अब्बा कहेगा, जो उसे दादा-परदादा बनायेगा, जिस के लिए उसने मेहनत की, घर बनाया, और न जाने कितने सपने सजाये—उन खिलौनों की तरह, जिस से शो-केस भरा हुआ था। अलमारी में रखे हुए खिलौने, टॉफियां, बिस्कुट, लॉन में खिलने वाले फूल, सब किसी के आगमन की प्रतीक्षा में थे और सलमा को देखो कि कैपस्यूल खाना ही भूल गयी, मगर सलमा भला यह बात भूल सकती थी? वह तो सारी रात सोचती रही थी कि नाश्ते के बाद कैपस्यूल खाना है, मगर नाश्ते के बाद जब खालिद ने याद दिलाया, तो वह बड़े आलस से बैठी रही। दरअसल वह चाहती थी कि इस चारदीवारी के निर्माण में खालिद भी तो हिस्सा ले। उसे अपने हाथ से कैपस्यूल खिला कर आफिस जाये, ताकि वह सारे दिन अपने सामने के खतरों को हटा कर किसी रंगीन सपने में खोयी रहे।

मगर खालिद को आफिस जाते समय ऐसे चोंचलों का होश कहां रहता है।

जब खालिद चला गया, तो उसने स्वयं ही कैपस्यूल की शीशी उठायी और एक कैपस्यूल हथेली पर निकाल कर खिड़की की रोशनी में उसे देखने लगी।

कैपस्यूल के दानों में एक नन्हें-से बच्चे का आकार उभरने लगा। घुटने पेट से लगाये गठरी बना एक नन्हा-सा बच्चा उसके अंदर सो रहा था। फिर वह बड़ा हो जायेगा। खूब बड़ा! सलमा उसे सिर उठा कर देखा करेगी। हरी की तरह। हरी उसके पड़ोस में रहता था। अठारह-उन्नीस वर्ष का! बड़ा स्मार्ट, खूबसूरत-सा लड़का था। उस पर हर कपड़ा अच्छा लगता था। सुबह को जब वह गाता-गुनगुनाता कालेज जाने के लिए निकलता था, तो सलमा बालकनी में से उसे देखे जाती, "मेरा बच्चा भी इतना बड़ा हो जायेगा इसी की तरह ."एक दिन हरी ने उसकी पीछा करने वाली नजरों को भांप लिया, तो सलमा सहम गयी। न जाने वह मुझे कैसी औरत समझ रहा होगा। तीस वर्ष की एक औरत किसी नौजवान को यों देखा करती है।

कैपस्यूल को मुट्ठी में दबाये हुए वह बालकनी में आयी। हरी अपने लॉन में दोस्तों के साथ बैडमिंटन खेल रहा था।

फिर दरवाज़े पर किसी ने बेल बजायी, तो सलमा ने घबरा कर कैपस्यूल शीशी में डाल दिया।

"क्या खालिद आफिस चले गये?" उसके जेठ माजिद आये थे। थके-थके निढाल-से। सलमा उनके पास वाले सोफे पर आ बैठी।

"कुशल तो है, क्या हुआ?" सलमा सचमुच घबरा-सी गयी।

"अभी तक जोर-ज़बरदस्ती से सिर्फ रुपये-पैसे ही छीन कर ले जाया करता था, मगर कल मेरी...मेरी घड़ी...' आवाज़ माजिद के कंठ में फंस गयी। सत्रह-अठारह वर्ष के बेटे को कोई बाप कैसे चोर ठहरा सकता है?

सलमा के दिल पर किसी ने घूंसा मार दिया। उसकी आंखें छलक पड़ीं। अपने बच्चे न थे, तो वे दोनों मियां-बीवी अपने बहन-भाइयों के बच्चों में बड़ी दिलचस्पी लेते थे। सलमा राशद को बहुत चाहती थी, मगर माजिद भाई और भाभी ने बच्चों को पालने में न जाने कहां गलती की थी कि राशद और उसके बहन-भाई बिगड़ते ही चले गये और अब...अब...

"तुम्हारी भाभी ने तो रात से रोते-रोते बुरा हाल कर लिया है। ज़रा किसी समय आ कर उन्हें समझाओ।"

माजिद भाई कराहते हुए उठे और परदा उठा कर बाहर चले गये।

"भाभी रो रही है, "सलमा ने कांप कर सोचा। चार खूबसूरत, हृष्ट-पुष्ट अक्लमंद बच्चों की खुशकिस्मत मां! उसने कितनी बार सोचा था, काश, मैं इन बच्चों की मां होती, मगर मेरी घड़ी...मेरे रुपये...मेरे घर की इज्ज़त...वह कांप उठी। नहीं...नहीं...मेरा बेटा ऐसा नहीं होगा...मैं तो उसके आस-पास सारे खतरे, सारी बुराइयां हटा दूंगी। मैं अपने बच्चे को एक ईमानदार, नेकदिल इंसान बनाऊंगी...

"दुल्हन पाशा...दुल्हन पाशा!"

□

"जी ! कदमबोसी अर्ज करती हूं छोटे अब्बा..."सलमा ने कैंपस्यूल की शीशी मेज पर रख दी, और झुक कर अपने चचा-ससुर को सलाम किया।

"जीती रहो बेटा...सुबह बिस्मिल्लाह बी ने बताया कि नसीबे-दुश्मनां आपकी तबीयत खराब है। डाक्टरनी आयी थी देखने ! अल्लाह खैर करे !"

"जी नहीं ! छोटे अब्बा ! मैं तो बिलकुल अच्छी हूं। ज़रा पेट दर्द था, "वह मुंह पर हाथ रख कर मुसकराने लगी। वह छोटे अब्बा से क्या कहती कि उसकी तबीयत तो अब बहुत अच्छी होने वाली है।

"आपकी तबीयत अब कैसी है ? बहुत कमज़ोर हो गये हैं, "वाकई छोटे अब्बा बहुत बीमार-से लग रहे थे। छोटे अब्बा खानदान में सब से ज़्यादा सीधे-सादे और नेक दिल आदमी थे। कभी न झूठ बोले। न किसी को दुख दिया। मगर उनकी ज़िंदगी बड़ी मुश्किल से गुज़री। बीवी जवानी में मर गयी। दामाद सब के सब स्वार्थी निकले। उन्हें खूब लूटा। बहुएं आयीं, जो किसी ने उन्हें पास रखना गवारा न किया। बेटों ने जायदाद बंटवा ली। और अब वह तेरे-मेरे घर धक्के खाते फिरते थे। वकील उन्हें धोखा देते। नौकर उन्हें लूट-खसोट कर भाग जाते। बच्चे उन्हें बेवकूफ बना कर दो-चार रुपये ऐंठ लेते। छोटे अब्बा सब जानते थे, मगर किसी को बुरा न कहते। हर समय खांसते-कराहते रिश्तेदारों के दुख-दर्द में शामिल होने पहुंच जाते थे, हालांकि सब उनका मज़ाक उड़ाते थे। बच्चे उनकी नकलें कर के खूब हंसाते।

आज सलमा को यह सब बातें याद आ रही थीं, और वह छोटे अब्बा को देखकर सोच रही थी कि यह नेकी और सच्चाई के वह आइडियल पुतले हैं, जो हर मां की रचना का सपना है, मगर दुनिया ने उन्हें उस मिठाई की तरह उगल दिया है, जो असहनीय हो।

सच्चाई और नेकी की राह पर चलने वालों को दुनिया तबाही की गुफा में धक्का देकर आगे बढ़ जाती है, "अल्लाह ! तू मेरे बच्चे को इतना नेक न बनाना, जैसे छोटे अब्बा हैं..."सलमा ने कांप कर सोचा।

"आपकी तबीयत ठीक नहीं मालूम होती। सो जाइये !" उसे गुमसुम देख कर छोटे अब्बा उठ गये, मैं ज़रा छोटी बहू के यहां जा रहा हूं। सुना है, उसका ब्लड-प्रेशर फिर बढ़ रहा है।

छोटे अब्बा छड़ी के सहारे उठे और लड़लखड़ाते हुए बाहर चले गये।

"यह लोग आज कैंपस्यूल नहीं खाने देंगे, "सलमा उठी। ग्यारह बज गये। सुबह ही कैंपस्यूल खाना था। कहीं मिसेज़ सुबहानी चेकअप को न आ जाये। वह शीशी उठा रही थी कि फिर बेल बजी। मामा ने दरवाज़े का परदा उठा कर कहा, "डाक्टर साहब आये हैं !"

"आदाब अर्ज़ सुबहानी भाई..."वह उठ कर खड़ी हो गयी। डाक्टर सुबहानी बहुत तेज़ी से आये और ब्लड-प्रेशर चेक करने के लिए पट्टी उसके हाथ पर बांधते हुए बोले, "मैमोना की आज मार्निग-ड्यूटी थी। वह कह कर गयी थी कि मैं आपका चेकअप ज़रूर कर लूं। सब कुछ ठीक है न ?"

"हां !" वह खुशी के मारे कुछ न कह सकी। बस डाक्टर सुवहानी को देखे गयी। इतना बड़ा डाक्टर महज़ मैमोना की दोस्ती में उसे देखने आया है। वह दोनों मियां-बीवी दुनिया भर की डिग्रियां रखते हैं! शहर के सब से मशहूर डाक्टर हैं, मगर कितने सहृदय हैं। सलमा के गिर्द सलामती की चारदीवारी बांध रहे हैं, ताकि अबार्शन के सभी खतरे टल जायें।

यह डाक्टर मैमोना के इलाज का असर था कि वह मां बन रही है। डाक्टर सुवहानी बेहद लोकप्रिय डाक्टर थे। शहर के सभी क्षेत्रों और वर्गों में पसंद किये जाते थे। खूबसूरत, हंसमुख, शिष्ट, दोनों मियां-बीवी में बड़ी मुहब्बत थी। दोनों डाक्टर थे। प्यारे-प्यारे बच्चों के मां-बाप। अल्लाह ने डाक्टर सुवहानी को हर नेमत दी थी। वह मरीज़ को छूते और उसका मर्ज़ दूर हो जाता।

आज सलमा की नज़रें डाक्टर सुबहानी पर से हटती ही न थीं। वह हंस-हंस कर उसकी तबीयत पूछ रहे थे। रुक-रुक कर उसे परहेज़ और एहतियात बता रहे थे। और बेहद सावधानी से उसका ब्लड-प्रेशर चेक कर रहे थे।

डाक्टर सुबहानी के सख्त हाथों में उसकी पतली-सी बांहें थीं और डाक्टर सुबहानी का पूरा वजूद सलमा की हस्ती पर छा गया था। वह एक महान इंसान की रचना में व्यस्त थी। ऊंचा, पूरा, हंसमुख, जिम्मेदार और दूसरों के दुख-दर्द बांटने वाला इंसान! जभी तो नव्वे मांओं की यह आकांक्षा होती है कि उनका बेटा डाक्टर बने डाक्टर मुझे भी बुढ़ापे में एक डाक्टर की ज़रूरत होगी, जो मेरा ब्लड-प्रेशर चेक करे, जो मेरे दिल के सभी ज़ख्मों पर फाहे रख सके। मेरा डाक्टर...डाक्टर...

"क्या आपको नींद आ रही है? यह इस इंजेक्शन का रियेक्शन है। लेट जाइये!"

डाक्टर ने अपने मेहरबान हाथों से उसे सोफे पर लिटा दिया और फोन उठा कर डायल करने लगा, हैलो! मैं डाक्टर सुबहानी बोल रहा हूं। मिस्टर ग्यारह नंबर को अभी इंजेक्शन मत दो ..काफी मोटी आसामी है...उस से कुछ वसूल तो कर लें...हां, मैं शाम को क्लीनिक आऊंगा!"

ऊंघते-ऊंघते सलमा यों तड़प कर उठी, जैसे बिच्छू ने डंक मार दिया हो। उसने बड़ी नफरत से, बड़े गुस्से से डाक्टर सुबहानी को "खुदा हाफिज़" कहा—उस संगदिल इंसान को, जिस ने बेदर्दी से उसकी बांहों में सुई उतार दी थी...न जाने कैसा ज़हर था उस सुई में कि सलमा के सारे बदन में फैल गया। उसने कैपस्यूल की शीशी फिर उठायी। कैपस्यूल के अंदर बंद नन्हें-नन्हें कण कीड़ों की तरह बुलबुलाने लगे। वे बड़े होते गये और भयानक दरिन्दे बन गये। मुंह खोले अजगर हर ओर से सलमा को घेरने लगे और उसकी ओर बढ़ने लगे।

उसने अपने घूमते हुए सिर को दोनों हाथों से थाम कर कमरे में लरज़ते-कांपते उन खौफनाक भूतों को देखा और कैपस्यूल की वह शीशी उठा कर बड़ी नफरत से वाहर फेंक दी, जिस में उसके रंगीन सपने सुरक्षित थे। □

अनु० सुरजीत

कश्मीरी कहानी

रिहर्सल

□ बंसी निर्दोष

मैंने केवल सुन रखा था, देखा नहीं था कि 'क्लब' किसको कहते हैं, 'बार' क्या होता है या फिर रेस्तरां में क्या होता है ? किसी बड़े होटल को भी मैंने अन्दर से नहीं देखा था। जिन दिनों मैं कालेज में पढ़ता था उन मस्ती के दिनों में भी मैं किसी बार, होटल या क्लब के पास फटका तक नहीं था। फटकता भी कैसे ? एक तो जेब में पैसे नहीं होते तिस पर घर वालों का डर। बंड (श्रीनगर की पॉश कालोनी) पर कई-सारे होटल और एक क्लब था। किसी दिन कालेज से निकल कर बंड पर चला जाता तो कानों में आरक्रेस्ट्रा की मधुर धुन मिश्री घोल देती थी। "बाहर जब इतना आनन्द आ रहा है तो इन होटलों के भीतर जाने पर कितना आनन्द आता होगा ?" मैं अक्सर सोचा करता। तभी मैं सतर्क हो जाता—ओह, बंड पर चलते मुझे किसी ने देखा तो नहीं ?......

गांव का आदमी कितना भी पढ़ा-लिखा क्यों न हो वह जब शहर आता है तो अपने आप को एक अजीब तरह के माहौल में पाता है। उसकी हालत ऐसी हो जाती है मानो किसी पुराने ज़माने का नमूना हो। मेरी भी तब यही हालत हुई जब मैं मदन के साथ इस शहर के एक बहुत बड़े क्लब में चला गया। क्लब में गहमागहमी थी पर मुझे देख कर वह मद्धिम पड़ गई। वेटर मेरी ओर देखने लगे। मेज़ों के आरपार कुर्सियों पर बैठी सुन्दर संभ्रांत महिलाएं और टाईधारी मर्द जो अभी तक बातों में व्यस्त थे, मुझे देख झट से उठ खड़े हुए। मुझे लगा जैसे वे एक-दूसरे से पूछ रहे हों—यह कौन-सा जानवर यहां आया है ?.. ...मैं तनिक भी विचलित नहीं हुआ। दरअसल, मैं स्वयं यहां नहीं आया था। मुझे तो मेरे बचपन का दोस्त, मेरा अन्तरंग मदन यहां लाया था।... इस क्लब में मदन की बहुत चलती थी।......मैंने अपने को ऊपर से नीचे तक देखा। कपड़े मेरे कोई खास बुरे

नहीं थे। स्वयं मदन ने सिलेक्ट कर के पहनाए थे। (हां तोंद मेरी छिपाए छिप नहीं रही थी और शायद इसी को देख लोग ठिठक-से गये थे।) घर से निकलने से पहले मदन ने खुद मेरे बाल संवारे थे। मेरे कोट के बटन ठीक करते समय वह मुझे बराबर कहता रहा—मेरी बातों पर पहले गौर किया होता तो इस समय तक तुम भी बड़े आदमी (साहब) बन गये होते—। मेरी तरह !"

'उंह, बड़ा आदमी बनना कोई अपने हाथ की बात है ? मदन गलत कहता है, मुझे बहकाता है। मुझे गांव वाला समझ कर ठगता है। परमिट और लाइसेंस देने की बातें करता है। कहता है कि सारे शहर में मेरा सिक्का जमवाएगा ...। मगर किस तरह ?... 'क्या क्लब में जाने से ही किसी का भाग्य बदल जाता है ?' ..मैं यह आज अपनी आंखों से देखना चाहता था। मैं यह भी देखना चाहता था कि उसकी बातों में, वास्तव में, कितना दम है ?

वैसे घर से निकलते समय मैंने उसे कहा था—

"मदन भाई, लगता है आज तुम मेरी भद्द उड़वा के ही मानोगे । मालूम है ना तुम्हें, जब कौआ मोरों के झुंड में मोर-पंख लगा कर शामिल हुआ तो उसकी क्या गत हुई ?..."

"इन दकियानूसी बातों को दिमाग से निकाल दे, यार !" मदन ने मेरी ओर देख कर छाती फुलाते हुए काहा—"छोटी बातों को भूल जाओ और बड़ी बातों पर अमल करना सीखो। बस। मान लो कि आज से तुम बड़े नेता बन गये । अपने गांव के नेता बन गये। अपने गांव के नेता ! किसानों के नेता !...अब तो चुनाव नज़दीक हैं। मैं तुम्हें मैनडीट दिलाऊंगा . यह काम तुम मुझ पर छोड़ो...हमें गूंगों को बुलवाना आता है . !"

मैंने मन में सोचा—इसके इरादों की सूची सचमुच लम्बी है। यह सब धन की माया है और कुछ नहीं। पिछले दस सालों में मदन ने अनाप-शनाप धन कमाया था—छल, बल और अपने दिमाग से। पैसे की वजह से ही उसके मुंह से आज बड़े-बड़े बोल फूट रहे हैं और वह शराफत और संभ्रांतता की मूरत बना फिर रहा है। सच है, पैसे में बड़ी ताकत है। समाज भी ऐसे ही लोगों की तरफ हो जाता है।...आज कई-सारे बड़े-बड़े प्रभावशाली अफसरों के साथ मदन के गहरे सम्बन्ध हैं। पार्टी-नेताओं के साथ उसका उठना-बैठना है। वह कितनी ही रूपसियों का चहेता है। ऐसे हरफनमौला के सामने भला मेरी क्या बिसात ? मैं चुपचाप उसके पीछे-पीछे हो लिया।

क्लब के अन्दर पहुंच कर मदन ने मुझे समझाते हुए कहा—

"यहां बैठ जाओ, इस मेज़ के सामने। आज से तुम्हारी रिहर्सल शुरू। आज से तुम्हारी लीडरी और नेतागिरी का इम्तहान शुरू होगा।"

यह सुनकर मैं चौंक-सा गया। क्लब की गहमागहमी और वहां का माहौल देख कर मैंने वहां से चुपचाप खिसक जाने की सोची। मगर खिसक जाने के लिए मदन ने मेरे लिए कोई गुंजाइश नहीं छोड़ी थी। अपना हाथ उन्होंने मेरे कन्धे पर रखा था। सो मैं खिसकता कैसे ? वैसे, यहां से निकल जाने का रास्ता भी मुझे मालूम नहीं था। जहां से मदन ने घुमाया-फिराया, बस उन्हीं रास्तों से चलकर मैं यहां आया था। क्लब की चकाचौंध देखकर

मेरी आंखों के सामने अन्धेरा-सा छा गया ।...मेरा हाथ पकड़ कर मदन ने मुझे अपने दोस्तों से मिलवाया। जहां-जहां से हम गुज़रे, हमारा खुले दिल स्वागत किया गया। कुछ लोग अपनी कुर्सियों से उठ गए—कुछ ने हमारे लिए जगह छोड़ दी, कुछ ने बड़े अदब के साथ हम दोनों को सलाम किया। मदन ने कितनों के साथ मेरा परिचय करवाया—मुझे याद नहीं रहा । मेरी प्रशंसा में उसने अंग्रेज़ी-मिश्रित भाषा का प्रयोग किया ।

एक-दो सुन्दर महिलाओं के साथ ठिठोली करने के बाद मदन मुझे एक तरफ ले गया और कहा—

"इस कुर्सी पर बैठ जाओ इत्मीनान से। अब मैं तुम्हारे लिए एक रूपसी को भेजता हूं जो तुम्हें कम्पनी देगी ।जिस आत्मविश्वास भरे लहजे में मदन ने यह बात मुझ से कही थी, उसी आत्मविश्वास भरे अन्दाज में मैं शर्मिन्दा हो गया। मुझ से कुछ भी कहते न बना। दिल ज़ोर से धक-धक करने लगा । इतने में वेटर मेज़ के पास आया । मदन ने किस चीज़ का आर्डर उसे दिया, मैं समझ न पाया। इससे पहले कि मैं मदन से कुछ पूछूं वह उसी समय किसी दूसरे आदमी के साथ बात करने में व्यस्त हो गया।...मेरी नज़रें 'बार' की तरफ गईं। वहां कुछ महिलायें और पुरुष हाथों में जाम थामे 'चीयर्स-चीयर्स' कह रहे थे...। उस मादक माहौल में कोई औरत मेरी ओर देखती तो मेरा रोम-रोम पुलकित हो उठता।...मैंने समय काटने के लिए यों ही मेज़ पर से मीनू-कार्ड उठाया और उसे उलटने-पलटने लगा। इस शहर को मैंने पहले भी देखा था। शहर के लोग भी देखे थे। मगर इस तरह से एक-साथ कई सारी सुन्दर स्त्रियों को एक साथ नहीं देखा था और न ही ऐसे ठाठ-बाट और मस्ती भरे मर्दों को देखा था। इन सबके चेहरे मज़ार पर खिलने वाले फूलों की तरह सुर्ख थे।...मदन ठीक ही कहता था—'इन्द्र सभा तो बस एक कल्पना है।...तू चल मेरे साथ। वहां हर औरत तुझे एक से बढ़ कर एक दीखेगी—मेनका और उर्वशी से भी बढ़ कर।'

इतने में वेटर दो जाम और एक प्लेट कटलेट लाया। मैंने कोई तकरार नहीं की। एक पेग गटक जाने के बाद मदन मुझसे बोला—

"तुम बोर तो नहीं हुए ? आज तुम्हारी सारी बोरियत खत्म हो जाएगी। नैनसी आती ही होगी।"

"नैनसी ! कौन नैनसी ?" मैं पूछना चाहता था।

तभी मदन फिर बोला—

"कैसा लग रहा है ?",

एक सिप लेते हुए मैंने अंग्रेज़ी में क़हा—

"नर्कवासी को यदि स्वर्ग में ले जाएं तो उसको कैसा लगेगा ?"

इस पर मदन ठाकर हंस दिया—

"यू सिली।"

उसकी इस छिटकती हंसी ने सब की आंखें हमारी ओर फिरा दीं।...मैंने अब दाएं-बाएं मेज़ों की ओर ध्यान से देखना शुरू कर दिया। एक पेग लेने के बाद मुझ में हिम्मत-सी

आ गई थी। बार का यह हाल मुझे इस समय एक मेक-अप रूम-सा लगा। पीने के दौर जारी थे...। जो पीते नहीं थे उनकी आंखों में भी खुमारी थी। . बीच-बीच में कोई जोड़ा खड़ा हो जाता और फर्श पर कदम से कदम मिला कर तथा एक-दूसरे की कमर में हाथ देकर आरकेस्ट्रा की धुन पर नाचता। .. . इतने में एक परी-सी महिला को अपनी ओर आते देख मेरी बोझिल पलकें कुछ क्षणों के लिए खुली की खुली रह गईं। वह मेरे पास ही कुर्सी पर बैठ गई। मैं समझ न पाया कि मुझे क्या करना चाहिए। मदन ने उसे मेरे बारे में क्या कहा था, यह भी मैं समझ न पाया। ..तभी मदन ने मेरा जाम अपने हाथ में लेकर मुझसे कहा—

'इनका नाम मधु है, मिसेज़ मधु तन्खा। इनके पति को सारा शहर जानता है। खासकर वे लोग जिनको मकान बनाना हो या कर्ज़ लेना हो। 'माडर्न हार्डवेयर स्टोर' इन्हीं का है।"

मैंने मदन की इस बात का कोई जवाब नहीं दिया। बस गर्दन हिला कर उसकी हाँ में हां मिलाता रहा। मदन ने मुझे समझा रखा था कि मैं उसकी किसी भी बात को 'न' न करूं। ..वैसे, मुझे न कोई मकान बनाना था और न ही कर्ज़ चाहिए था, इसलिए 'माडर्न हार्ड-वेयर स्टोर' के मालिक या मालकिन के प्रति मुझे कोई दिलचस्पी नहीं हुई।... हां, मिसेज़ मधु को देखकर मैं प्रभावित ज़रूर हुआ। चालीस की रही होगी, मगर लगती तीस के आस-पास थीं। चेहरे पर न कोई शिकन, न बालों में कोई सफेदी। खुले हुए बाल उसके शानों पर लहरा रहे थे। मिसेज़ मधु ने मुझ से हाथ मिलाया। मुझे लगा जैसे तन्दूर से ताजा डबल रोटी निकाली गई हो। मदन ने वेटर को आर्डर देना चाहा। मगर मिसेज़ मधु ने कुछ भी पीने से इन्कार किया। हां, उसने मदन से कुछ धीमे स्वर में कहा, शायद उसके साथ डांस करने को कहा। मदन ने मुझ से पूछा—

"जाऊं मैं इसके साथ ?"

"हां-हां, क्यों नहीं। बिल्कुल !" मैंने कहा।

वेटर मेरे लिए एक और पेग लाया। उसे मैं गटक गया। शरीर में जितनी गर्माहट आई, उससे भी ज्यादा मेरी हिम्मत बढ़ गई। अब मैं लगभग निडर हो गया था। इतने में मदन एक और महिला को मेरे पास लाया और उसे कुर्सी पर बिठा दिया। शायद यही नैनसी थी। उसने मुझे अंग्रेज़ी में सलाम किया और अपनी कुर्सी मेरे नज़दीक खींच ली। फिर बड़ी अदा के साथ पूछा—

"आपका नाम ?"

"हरीश" मैंने कहा।

"आप का बिज़नेस, आई मीन आप करते क्या हैं ?" कहकर उसने मेरा खाली जाम अपने हाथों में ले लिया।

"स्टडी" मैंने जवाब दिया। पर मेरे इस जवाब का मतलब यह हरगिज़ न था कि मैं पुस्तकों का अध्ययन करता हूं। दरअसल, कहना मैं यह चाहता था कि मैं कुछ स्टडी करने, कुछ खोज करने निकला हूं और उसकी आज रिहर्सल है।

वह समझ बैठी कि मैं किताबें पढ़ने वाला जीव हूं। तभी वह बोली—

"इन दिनों आपने नया-क्या पढ़ा है ?"

"एक ऐसी किताब जिसका विषय है सादगी...। सौंदर्य जितना सादा होता है, उतना ही आकर्षक भी।" मैंने कहा।

इस पर वह हंस दी—

"यह आप शायद मेरी तारीफ कर रहे हैं या अपनी ?" सुनकर मेरा चेहरा लाल हो गया।

यह मेरी बात का बिल्कुल सही मतलब समझ गई थी ! इस वक्त तक क्लब में महिलाओं की अच्छी-खासी संख्या हो गई थी किन्तु जो चुम्बकीय आकर्षण इस रूपसी में था, वह अन्य किसी में भी नहीं था।

उसका नाम पूछने की मेरी हिम्मत नहीं हुई। इससे पहले कि मैं यह सोचता कि बात को आगे कैसे बढ़ाऊं, वह बोली—

"आप पीते हैं ?"

"कभी-कभी" कह कर मैं मदन की ओर देखने लगा। वह अभी भी मिसेज़ मधु के साथ नाच में मस्त था।

"तो फिर बोलिए, क्या पियेंगे आप ?"

"जो आप पिलाएंगी" अपने इस साहसपूर्ण उत्तर पर मैंने मन ही मन अपनी पीठ ठोंकी।

"पानी, सादा पानी कैसा रहेगा ? सादगी तो पानी में ही है" उसने अर्थभरी मुस्कराहट के साथ कहा।

"गलत ! बिल्कुल गलत ! सादे पानी को भी अगर आपके हाथ छू लें तो उसमें नशा आ जाएगा !"

"वण्डरफुल ! आप तो शायरी भी करते हैं।"

यह बात उसने कश्मीरी में कही।

"जी, यह आपकी कम्पनी का असर है।"

"सो कैसे ?" अब वह खुलकर कश्मीरी में बातें करने लगी थी।

"जब हुस्न और एहसास आपस में मिलते हैं तो शायरी अपने-आप फूट पड़ती है।"

"सही कहा आपने।...अच्छा यह बताइए कि आपको शैली पसद है या कीट्स या बायरन ?"

"मुझे तो कश्मीरी कवयित्री ललद्यद पसंद है।"

"मैंने तो कश्मीरी बिल्कुल नहीं पढ़ी।"

"पर अभी तो आप कश्मीरी में बातें कर रही थीं...।"

"हां-हां, वह मेरी मदर कश्मीरी बोलती है ना, इसलिए थोड़ी-बहुत मैं भी सीख गई हूं...। घर में बाकी सभी लोग अंग्रेजी बोलते हैं...। वैसे, इन दिनों मैं रूसी भाषा सीख रही हूं।"

"बहुत ठीक कर रही हैं आप। हमारे देश के रूस के साथ अच्छे सम्बन्ध हैं। वहाँ भी सोशलिस्ट और हम भी सोशलिस्ट।"

"ओऽ नो. इसलिए नहीं।" वह बालों में कंघी फेरने लगी—"दरअसल. मैं दायतोवस्की को ओरिजनल में पढ़ना चाहती हूँ।"

"रूस के इस मज़दूर शायर को पढ़ने का आपको इतना शौक है?" उसकी कविता में आपको कोई आकर्षण लगा?"

"हां" उसने इस अन्दाज़ में कहा जैसे वह स्वयं शायरा हो—"मुझे हथौड़ों की ठक-ठक और कीचड़ में मज़दूरों के चलने की आवाज़ बहुत अच्छी लगती है।"

"लवली, मोस्ट लवली! ये शब्द अंग्रेज़ी में मेरे मुंह से सहज रूप में निकले।

"अच्छा, पसीने में लथपथ किसी मज़दूर को आपने देखा है कभी?" वह बोली।

"हां, देखा है।"

"उसका पसीने से भरा बदन देख कर आपको कभी कोई अहसास हुआ?"

"हुआ होगा, पर इस समय याद नहीं...। दरअसल, मेरा सोचना भी आपसे अलग नहीं है। दायतोवस्की मुझे भी बेहद पसन्द है। उसकी शायरी में मज़दूरों का पसीना चुहचुहाता है, उसकी पोयट्री में मजदूरों के बदन की थकन झलकती है, उसके रक्त का प्रवाह दौड़ता है और उनकी भुजाओं की ताकत उफनती है..." मैंने कहा।

"उसकी शायरी में यह एहसास एकदम नेचुरल है" उसने समझाते हुए कहा—"देखा जाए तो हर नेचुरल इंसटिंक्ट (instinct) सेक्सी हुआ करता है। क्या आप यह जानते हैं?"

इस बात का मैंने कोई जवाब नहीं दिया। सोचा, कहीं इसने फ्रॉयड न पढ़ा हो तो मेरे लिए भारी पड़ेगी। तभी मुझे याद आया कि मेरा फ्रॉयड तो इस समय गांव में है। गाय के थनों से दूध निकाल रहा होगा या फिर चौके में बर्तन घिस रहा होगा।...मैंने ऐसी खुली बातें किसी भी महिला के साथ नहीं की थीं आज तक। सेक्स आदि की बातें सुनकर मैं शर्माया। मेरी यह अदा इस महिला को और भी पसंद आ गई। उसने अपनी दो अंगुलियों से मेरे दाएं गाल पर चिकोटी काट ली।

"क्यों न हम इसी वक्त यहां के इस दमघोंट वातावरण से बाहर निकल जाएं?" मैंने सुझाया।

"बेशक, क्यों नहीं!" कहकर वह कुर्सी से उठ खड़ी हुई। उसने मेरा हाथ ऐसे पकड़ा जैसे मुझे कई सालों से जानती हो। जब हम मदन के आगे से निकले तो उसने मेरे कान में धीमे से कहा—

"बच्चू, खुल गई तकदीर तेरी...। अब चमकेगा तेरा सितारा...करोड़पति बाप की बेटी है यह—।"

☐

उस वक्त मुझे मदन की वह बात पहेली-सी लगी थी। आज लगता है कि उसकी बात में कितना दम था।

अनु० डॉ० शिबन कृष्ण रैणा

विदेशी साहित्य
इतालवी कहानी

सिर्फ चीज़ें

□ अलबर्तो मोराविया

गली बहुत सुन्दर नहीं थी तो बुरी भी नहीं थी दोनों तरफ बादामी रंग के मकान थे। कीरो और लिबिया इस गली में मकान ढूंढने आये थे। उनका विवाह होने वाला था और वे चाहते थे कि किसी एकांत-सी गली में वे अपने लिए एक मकान खोज लें। यह काफी एकांत-सी गली थी। लिबिया बहुत उत्सुकतापूर्वक एक इमारत के सामने खड़ी हो गई। कीरो को लगा कि लिबिया का उत्साह आवश्यकता से कुछ ज्यादा था। उसने लिबिया का हाथ अपने हाथ में दबा लिया और पूछा, "तुम्हें कैसे पता चला कि इस गली में कोई मकान किराये के लिए खाली है ?"

मैंने सुबह बहुत-सी गलियां देखीं। यह गली मुझे अच्छी लगी। इस मकान के बाहर 'किराये के लिए खाली' की तख्ती लगी हुई थी।"

तुमने ऊपर जाकर कमरे देखे हैं ?

"नहीं, सिर्फ चौकीदार से पूछा था। उसी ने बताया था कि दो बजे से चार बजे के बीच हम यह मकान देख सकते हैं।"

कीरो ने दरवाजे के बाहर लिखा हुआ नाम देखा 'इपोलिटो' "यह कैसा नाम है भला ?" कुछ सोचते हुए कीरो ने कहा।

"हमें क्या, कोई भी नाम हो।" लिबिया ने लापरवाही से जवाब दिया।

"परन्तु यह एक अधूरा-सा नाम लगता है। आखिर वह आदमी डॉक्टर, वकील, व्यापारी कुछ तो होगा ही। यहां कुछ भी नहीं लिखा हुआ।"

लिबिया ने लापरवाही से पहले नाम की ओर देखा, फिर घंटी की ओर। कीरो के भीतर ईर्ष्या की एक चींटी-सी लहरा उठी। लिबिया का पतला चेहरा, बड़ी-बड़ी आंखें और

लाल होंठ कीरो के भीतर हलचल मचा रहे थे। लिविया को दुनिया की आंखों से छिपा लेने की और जल्दी से छुपा लेने की तीव्र इच्छा उसके भीतर पैदा हुई।

—मुझे एक बार अपने को चूम लेने दो।" कीरो ने बेसब्री से कहा।

—नहीं इस वक्त नहीं।" लिबिया ने कहा और अपना हाथ घंटी की ओर बढ़ा दिया।

—एक बार...कीरो ने कहा और लिविया को अपनी ओर खींचा। लिबिया ने बांह को थोड़ा-सा झटक कर घंटी का बटन दबा दिया। परन्तु कीरो ने लिविया की बांह अपनी ओर खींच ली और उसके चेहरे को अपने चेहरे की तरफ लाकर उसे चूम लिया। ऐन उसी वक्त दरवाजा खुला और कीरो ने देखा कि सामने की दहलीज पर एक नवयुवक खड़ा है, जिसके बाल घने और घुंघराले थे। उसकी आंखों में एक खास आलस था। उसकी नाक छोटी थी, होंठ बहुत भरे हुए—और कीरो को लगा कि लिविया इस आनन-फानन में कुछ घबरा-सी गई है।

"आइये!" दहलीज पर खड़े नवयुवक ने कहा। उस की आवाज गहरी थी। कीरो को ऐसा लगा जैसे वहां कुछ खतरा हो लेकिन कुछ संभल कर कहा—हम अपने लिए घर की तलाश कर रहे हैं, कुछ दिनों में ही हमारा विवाह होने वाला है... .."

कमरे में आकर कीरो ने लिबिया की ओर देखा और फिर लिबिया के साथ अपने सम्बन्धों की ओर अपने अधिकार की पुष्टि-सी करते हुए उसने लिबिया से पूछा, लिपस्टिक तो नहीं लगी?"

"नहीं," लिविया ने लज्जाते हुए ज़वाब दिया।

"मुझे लगा कि जैसे...... ।

"मैंने आज लिपस्टिक लगाई ही नहीं।" लिबिया ने कहा और कमरे की छत की ओर देखने लगी। छत खूब थी, दीवारें साफ थीं और कमरे में लम्बी बैक वाली कुर्सियां पड़ी हुई थीं।

"आप......" कीरो ने काफी गौर से इपोलिटो की ओर देखा।

"मैं फिल्मों में काम करता हूं, कहानियां लिखता हूं।"

"आप निर्देशक भी हैं?" लिबिया ने दिलचस्पी दिखाते हुए पूछ लिया।

"जब कभी अपनी फिल्म बनाऊंगा, तब निर्देशक भी हो जाऊंगा, फिलहाल नहीं," वह हंसने लगा।

"फिल्मों में कुछ भी हो जाना आसान होता है......आसान लगता है।" कीरो ने निकट से ही जरा खीझ के साथ कहा।

"यह सोने का कमरा बड़ा नहीं है पर बैठक बहुत खुली है ..." इपोलिटो ने कहा और फिर कीरो को बैठक दिखायी। बैठक सचमुच काफी खुली थी। परे खिड़की में से इपोलिटो का अपना कमरा भी दीख रहा था—उसमें एक काफी बड़ा पलंग पड़ा हुआ था।

"तो आप अकेले नहीं रहते, आपकी पत्नी भी ..." कीरो ने ध्यान से पलंग की ओर देखा।

"मैं अकेला रहता हूं......वहुत वड़े पलंग पर सोना मुझे अच्छा लगता है।"

"वह दूसरा सोने का कमरा बड़ा नहीं, परन्तु..... ।"

"हमारे लिए यह बहुत ठीक है।" लिबिया ने कहा।

कीरो को समझ नहीं आ रहा था कि इपोलिटो की भारी और अलस भरी नज़र उसके भीतर एक प्रकार की खीझ क्यों पैदा कर रही है, उसे यह भी समझ नहीं आ रहा था कि लिबिया को यह जगह इस कद्र पसन्द क्यों आ रही है। लिविया के साथ अपने संबंध की तथा अपने अधिकार को दुहराने की उसे सख्त जरूरत महसूस हुई, उसने लिविया की कमर के गिर्द अपनी बांह लपेट ली और पूछा, "तुम्हें यह मकान पसंद है?"

'हां बहुत पसंद।'

और उसकी पसंद को स्वीकृति देने के लिए कीरो ने लिविया की गर्दन चूम ली।

फोन की घण्टी वज रही थी, इपोलिटो फोन सुनने चला गया तब लिबिया ने घुटी हुई सी आवाज़ में कीरो से कहा, 'ऐसे अनजान लोगों के सामने तुम इस तरह की हरकत क्यों करते हो ?"

बैठक की खिड़कियां बहुत बड़ी-बड़ी थीं। फर्श की रंगत खूब दूधिया थी। कुर्सियों पर लाल और काली धारियों वाला कपड़ा चढ़ाया गया था। सागौन की लकड़ी चमक रही थी। किताबों वाली अलमारी लोहे की थी, और कमरे के एक कोने में मेज पर टाइपराइटर रखा हुआ था।

"बैठक सचमुच बहुत अच्छी है।" कीरो ने कहा।

"बहुत ही अच्छी......" लिबिया ने उत्साह से उत्तर दिया। इपोलिटो कमरे में वापिस आ गया था। इस बीच कीरो लिबिया से परामर्श कर चुका था कि उन्हें यह मकान ले लेना चाहिये।

"मैं टैलीफोन कर देता हूं कि दुपहर का भोजन खाने बोर्डिंग हाउस नहीं जा पाऊंगा।" कीरो ने कहा।

"टैलीफोन बाहर बरामदे में है।" इपोलिटों ने बताया।

कीरो कमरे में जब लिबिया और इपोलिटो को अकेले छोड़कर बाहर बरामदे में जाने लगा तो उसे कुछ घबराहट-सी होने लगी तभी उसने देखा कि बरामदे में टैलीफोन के सामने एक बड़ा शीशा लगा है जिसमें से कमरे में खड़ी लिबिया को वह देख सकता है।

कीरो ने नम्बर मिलाया और सामने के शीशे में देखा—लिबिया ने आगे बढ़कर इपोलिटो के सीने पर हाथ रख दिया था फिर उसकी आंखों में आंखें डालकर देखा, और फिर तेजी से उसे एक बार गहरे छू कर परे हट गई ....।

कीरो के हाथ ढीले पड़ गए। टैलीफोन उसने वहां ही छोड़ दिया और कमरे में लौटते हुए कहा, "मुझे एक काम याद आ गया, मुझे अभी-अभी वापिस जाना पड़ेगा, मकान के बारे में फैसला हम आज नहीं कर पाएंगे?" लिबिया को अपनी गाड़ी में बिठाकर कीरो चुपचाप गाड़ी ड्राइव करता रहा। काफी देर बाद कीरो ने अचानक गाड़ी रोक ली।

"यह सब कुछ मेरे साथ एक धोखा था?" कीरो ने गुस्से में कहा।

'धोखा ? कैसा धोखा ?'

'तुम यदि इस अपने प्रेमी के पास ही आकर रहना चाहती थीं तो मुझे किस लिए...... ।'

'कौन किसके साथ ?'

'तुम समझ रही हो कि मैंने तुम्हें देखा नहीं—तुमने उसके गले में जब बाहें डाली थीं......'

'किसके ? इपोलिटो के ?'

'तुम उसका पूरा नाम क्यों नहीं लेती ?'

'क्योंकि मैं उसका नाम जानती नहीं ।'

'मतलब यह कि तुम्हें उसका नाम मालूम नहीं ?'

'वह मेरा कोई नहीं है... ..।'

लिबिया और कीरो के बीच एक सन्नाटा-सा छाया रहा । लिबिया ने बड़ी स्थिर और सम्भली हुई आवाज में इस सन्नाटे को तोड़ा और कहा, 'मैंने आज से पहले इस इपोलिटो को कभी नहीं देखा, जब उसने दरवाजा खोला तभी उसने देख लिया था कि दरवाजे के बाहर खड़े तुम मुझे.... । उसने समझ लिया कि मैं कोई अच्छी औरत नहीं हूं, इसलिए भीतर आते हुए उसने तुम्हारी आंख बचाकर मेरा हाथ दबाया था । मैं मौका देखकर तुम से कहने वाली थी कि आओ, यहां से चलो कि उसके सामने तुमने मुझे एक बार फिर . ...। सो, जब तुम टैलीफोन करने के लिए गए तो मैं .....'

'मैं तुम्हें बिल्कुल नहीं समझ सकता लिबिया !'

'तुमने मेरा अपमान किया है, तुमने मुझे सिर्फ चीज समझा है, एक आब्जैक्ट । उस समय अगर मेरे सामने इपोलिटो की जगह बेशक कोई बूढ़ा आदमी होता, या कोई दैत्य, या कोई कोढ़ी, मैं इसी तरह करती । ऐसा मैंने तुम्हारी वजह से नहीं किया, मैंने अपनी वजह से ही किया है, मैं अपने आप को बताना चाहती थी कि मैं सिर्फ चीज नहीं हूं ।'

कीरो ने गाड़ी धीमी गति से चला दी और फिर धीरे से लिबिया से पूछा, 'क्या तुम फिर कभी इस इपोलिटो से मिलोगी ?'

'मैं उससे क्यों मिलूंगी ? मैंने उसे उसी तरह दयनीय पात्र बनाया जैसे तुमने मुझे बनाया था । मैं उससे फिर कभी नहीं मिलूंगी ।'

☐ रूपांतर : डॉ० तरसेम गुजराल

किताबें

गंधर्व गाथा (कहानी संग्रह) ;
ले० हिमांशु जोशी ;
प्र० किताब घर, दरिया गंज, नई दिल्ली पृ० 223 ;
मूल्य 100/-
(प्रथम संस्करण दिसम्बर, 1994)

पाठक का अधिकार और रचनाकार का अनाधिकार हस्तक्षेप

□ हरिकृष्ण कौल

'गंधर्व-गाथा' कथा-संग्रह की बेशतर कहानियां पढ़कर अनायास ही रिनेसॅन्स (Renaissance) युग के अनेक तैल चित्र याद आते हैं और उनकी जो विशेषता आंखों के आगे कौंध जाती है वह उनमें चित्रित विषय नहीं अपितु विषय का चित्रण है। विषय के नाम पर कैनवास पर व्यक्तियों, वस्तुओं से भरी पूरी सेटिंग होती है जो धूमिल धूमिल सी होती है। लेकिन केन्द्र में जो एक दो आकृतियां होती हैं उन्हें ही उजले रंगों से हाइलाइट किया गया होता है। हिमांशु जोशी की इस नये संग्रह की कहानियों में भी जहां तक 'मैटीरियल' का सवाल है प्रसंगों, उनसे जुड़े पात्रों और दोनों के घात-प्रतिघात से उत्पन्न प्रश्नों की कमी नहीं है। पर उन्हें बस धूमिल रंगों में एकाध स्ट्रोकों से ही अंकित किया गया है और पूरी कहानी में एक या दो पात्र ही उभरते हैं जिन्हें 'हाइलाइट' किया गया है। शीर्षक कथा 'गंधर्व-गाथा' को ही लीजिए। सामग्री के रूप में इस कहानी में क्या नहीं है ? एक काम-काजी औरत रत्नम और उसके साथ वर्किंग वीमेनज होस्टल में रहने वाली, मिस बिन्दा, मिसेज पाल, कुमारी लुम्बा और दूसरी औरतें, उनकी ऐश और आदतें, रत्नम की जीजी जो उसे साड़ियां, चप्पल, ब्लाउज और जीजा की नजर बचाकर दो चार आने भी देती है जिसके मूल में दया भाव है। और उसका जीजा जो जीजी की नजरें बचाकर उसे बढ़िया साड़ी और दस का नोट देता है जिसके मूल में दया नहीं शायद कोई और भाव है। या फिर दूसरे शहरों से 'जॉब' के लिए दिल्ली आए लोगों का महानगर के जानलेवा परायेपन से अपनी रक्षा करने के लिए अपने ही प्रदेश के लोगों का सहारा ढूंढने की मजबूरी। लेकिन कथाकार

इन सब बातों का यों ही अप्रासंगिक रूप से (casually) जिक्र करता है और इस प्रकार इन्हें धूमिल रंगों में चित्रित करता है। फोकस में केवल रत्नम है। अखिलन भी नहीं जो नेकनियति से उसकी खालीपन को भरने के लिए आतुर है।

कहानी के आरंभ में भी रत्नम कुछ कह सकने में असमर्थ चुपचाप चली जाती है और कहानी के अन्त में भी वह अपने धड़कते सीने को थामती दूर चली जाती है और ओझल हो जाती है। आरम्भ से लेकर अन्त तक पाठक सामाजिक उदासीनता, उपेक्षा और तिरस्कार के हल्के सुरों के ऊपर हावी एक अवाक् औरत की धड़कनें सुनता है जिनका प्रभाव चीख और विलाप से कहीं अधिक हृदय विदारक है। संग्रह की कुछ अन्य कहानियों में भी विषय का निरूपण लगभग ऐसे ही हुआ है। लेकिन इसका कदापि यह अर्थ नहीं है कि जिस व्यक्ति या प्रसंग फोकस में नहीं हैं वे महत्वपूर्ण नहीं हैं। वे भी कहानी की पूरी संरचना के अनिवार्य घटक हैं और प्रत्येक घटक पूरे पैटर्न में अपनी-अपनी जगह महत्वपूर्ण होता है। पैटर्न या कम्पोजिस्ट मूलतः नियोजन या 'प्लेसमेंट' है और हिमांशु जोशी बखूबी जानते हैं कि उनकी कहानी में किस पात्र, किस प्रसंग, किस विवरण, किस सूचना और किस शब्द की जगह कहां है।

गंधर्व गाथा उत्तम पुरुष में लिखी गई कहानी नहीं है। उसका वक्ता स्वयं कहानी के बाहिर है। फिर भी वह जो कुछ भी देखता है रत्नम की आंखों से ही देखता है। कहानी के निरूपण में दृष्टि बिन्दु का इस प्रकार का प्रयोग कोई नई बात नहीं है। परन्तु इस कहानी में पात्र के साथ वक्ता का एकाकार होना रचना को निष्पक्ष विषयपरक गाथा ('गन्धर्व गाथा') शीर्षक के बावजूद) से दूर ले जाकर एक आत्मपरक 'लिरिक' के निकट लाता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह प्रगीतात्मकता ही कहानी को कथात्मक साहित्य की अन्य विधाओं से अलग करती है।

यहां इस सत्य की ओर ध्यान देना भी आवश्यक है कि किसी कहानी की सुगठित संरचना ही उसकी सार्थकता की गारंटी नहीं हो सकती है। आमतौर पर मनोरंजन की हल्की-फुल्की विधा मानी जाने के कारण कहानी के लिए किसी ठोस वैचारिक आधार की कदाचित कुछ अधिक ही आवश्यकता है। फ्रेंक ओ'कोतर का यह कथन बिलकुल सही है कि कहानी को रूप या कार्य नहीं, बल्कि वैचारिकी ही कथा-साहित्य की अन्य विधाओं से अलग करती है। इस वैचारिकी की पैठ और परिधि किसी भी मतवादी विचारधारा से गहरी और व्यापक है। कहानी में व्यक्ति के लिए त्रासद चिंता (ट्रैजिक कन्सर्न) और समाज के लिए हास्यकर दिलचस्पी (कॉमिक कन्सर्न) मिलती है। निरूपण की इसी द्वन्द्वात्मकता के कारण ही कहानी मानवीय संवेदना और विडम्बना की सशक्त विधा बन गई है। 'गंधर्व गाथा' की रत्नम हो या 'शेष प्रश्न' का रमा या फिर 'सफेद सपने' के 'वह लड़का और वह लड़की'—सभी अपने-अपने हिसाब से समाज द्वारा उपेक्षित हैं। रत्नम जिंदगी से बहुत ज्यादा नहीं चाहती है। उसकी आकांक्षाएं सीमित और मामूली हैं। एक छोटा सा घर उजली पुती दीवारें (धर्मवीर भारती) के रोमानी छोटे फूल बसे घर की 'धूप धुली छत' और 'छांह लिपी दीवारें' नहीं), चौके में किसी के लिए भोजन बनाना, किसी की कमीज में बटन टांकना, जूते के फीते खोलना—लेकिन विश्वनाथ, आफिस इंचार्ज मिस्टर भल्ला, चेरियन, यहां तक कि उसके अपने जीजा की नजरें भी उसके जिस्म और यौबन से

हटकर उसकी इन मामूली जरूरतों की ओर नहीं जाती है। 'शेष प्रश्न' का रमा परेशान है। उसका 'परवीन' दो दिन से लापता है और लोग सहानुभूति प्रकट करने के नाम पर केवल औपचारिकता निभाते हैं। 'सफेद सपनें' की लड़की और लड़के के अपने-अपने दुःख है जो परस्पर छूते तो हैं पर आपस में बंटते नहीं हैं।

मालूम नहीं यह मात्र संयोग है या कुछ और कि संग्रह में बहुत सी कहानियां ऐसी हैं जिनके केन्द्र में नारी है। एक ऐसी नारी जो पीड़ा को अपनी नियति मान कर उसे चुप-चाप सहती है और जब उसके जीवन में निर्णय का क्षण आता है तो वह स्वयं को भूल कर दूसरे का भला चाहती है। पूरी जिंदगी और सारी दुनिया में रत्नम को अकेला अखिलन ही मिला था जो आदमी था, वहशी जानवर नहीं। यही अखिलन जब उसके सामने विवाह का प्रस्ताव रखता है तो वह उसके भले के लिए ही उसे ठुकराती है। मगर हिमांशु जोशी की नारी शरत् की नारी भी नहीं है। अपने त्याग द्वारा वह अपने को छलती नहीं बल्कि, 'असर्ट' करती है। पीड़ित और तिरस्कृत होने के बावजूद वह कोई अवला नहीं है। वह कुछ लेने के लिए लाचार नहीं कुछ देने में समर्थ है। 'राजा' कहानी की भावना को उसके पति रतन ने कितनी यंत्रणाएं दीं? किसी दूसरी औरत के प्यार में पागल होकर क्या-क्या नहीं कहा? क्या-क्या नहीं किया? और फिर घर से ही बाहिर निकाल दिया। लेकिन जब उसे इसी आदमी की मृत्यु का तार मिलता है तो वह सारा द्वेष भूल कर, हर्ष विवाद से ऊपर उठकर रतन के क्रिया कर्म के लिए, नई पत्नी से जन्में उसके बच्चों की पढ़ाई के लिए और खस्ता हाल घर की हालत तनिक सुधारने के लिए अपनी बूढ़ी सास के हाथ में कुछ रुपये रखती है। वह यह सब तभी करती है जब वह यह सब कर सकती है। अपने समस्त दुखों के बावजूद वह कोई असहाय अबला नहीं, एक स्वावलम्बी सबला है।

लेखक ने संग्रह की भूमिका 'समर शेष है' में इस कहानी की दूसरी ही व्याख्या की है। —"'सज़ा' की सजा का स्वरूप स्वयं मेरे लिए कम त्रासद नहीं। यह भी निकट से देखा सच है, जो कहीं जीवन का एक बहुत बड़ा झूठ स्वयं में समाए हुए जैसा लगता है। आदमी घृणा, उपेक्षा, तिरस्कार सब सहज भाव से सह लेता है, लेकिन अतिशय उदारता, अतिशय करुणा अतिशय दया का दंश उसे सालने सा लगता है। इससे बड़ी सज़ा किसी के लिए और क्या हो सकती है कि हमारे अपकारों को अपकार न मानकर कोई उपकारों के पहाड़ तले दबकर मर जाने के लिए हमें विवश कर दे।"

अपने इस कथन से लेखक स्पॉट लाइट भावना पर नहीं बल्कि उस आदमी पर डालता हैं जिसे 'अतिशय दया का दंश सालने लगता है।' मगर वह आदमी कौन है? कहां है? वह रतन हो सकता था। लेकिन रतन कथा मंच पर मौजूद नहीं है। उसकी बूढ़ी मां अलबत्ता मौजूद है। किन्तु वह भी पर्दा गिरने से कुछ क्षण पहले मंच के एक कोने में आकर खड़ी हो जाती है। मगर उसी पर स्पाट लाइट डाली जाएगी तो क्या सारी प्रकाश व्यवस्था सारी मंच सज्जा और फलस्वरूप नाटक का प्रभाव गड़बड़ नहीं हो जाएगा?

नॉर्थ्रोप फ्राइ (Northrop Frye) ने अपनी 'द अनैटमी ऑफ क्रिटिसिज्म' (The Anatomy of criticism) में एक स्थान पर कहा है कि जरूरी नहीं कि कृतिकार अपनी कृति का सही व्याख्याकार भी हो। दान्ते द्वारा लिखी गई 'डिवाइन कॉमेडी' की व्याख्या उस अमर कृति की बस एक और व्याख्या हो सकती है असली या अन्तिम व्याख्या नहीं।

मित्र हिमांशु जोशी से मेरा विनम्र निवेदन है कि वे हम पाठकों को भी अपने ढंग से उनकी कहानियां समझने की छूट दें। कृतिकार अपनी कृति के विषय में अपना अलग मत रख सकता है। उसे व्यक्त भी कर सकता है। किन्तु पाठक को भी यह अधिकार है कि वह स्वयं कृति के बीच से गुजर कर अपना रास्ता खुद तलाश करे। भूमिका में लेखक द्वारा खड़ी की गई दिशा निर्देश की तख्तियां उसके इस अधिकार में अनाधिकार हस्तक्षेप है। गलत होने की स्थिति में ये निर्देश उसे निश्चित रूप से भटकाएंगे ही, मगर सही होने की सूरत में भी वे उससे खुद रास्ता तलाश करने का जोश (excitement) छीन लेंगे। □

पुस्तक—विविधा
पृष्ठ संख्या—164
संस्करण—प्रथम 1994।
प्रकाशक—'वाणी', मुजफ्फरनगर
डॉ० कृष्णचन्द्र गुप्त
186/12 आर्य पुरी, मुजफ्फरनगर (उ० प्र०) 251001
मूल्य—100 रु०

'विविधा'— परस्पर सहयोग व प्रेम की साहित्यिक उपलब्धि

□ डॉ० आदर्श

डॉ० कमलसिंह द्वारा सम्पादित मुजफ्फर नगर जनपद की गद्य रचनाओं को उजागर करता यह संग्रह है—'विविधा'।

मुजफ्फर नगर की साहित्यिक संस्था-वाणी की, प्रकाशन क्षेत्र में, यह तीसरी पुस्तकाकार उपलब्धि है। इससे पहले वाणी, कविता संग्रह 'अपनी धरती अपने बोल' 1992 में तथा 'कहानियां' नाम से संयुक्त कहानी संग्रह 1993 में प्रकाशित कर चुकी है।

'आवारा मसीहा'—शरत् की जीवनी के प्रणेता सुप्रसिद्ध कहानीकार व नाटककार, मुजफ्फर नगर की माटी से गढ़े और उसी की सोंधी गन्ध से गमके विष्णु प्रभाकर को समर्पित है यह संग्रह।

यह संग्रह समूचे देश को यह सन्देश देता है कि सहयोग निस्वार्थता और परोपकार की भावना और साहित्य के प्रति समर्पण भाव से बहुत कुछ अभी भी किया सकता है जबकि कागज व छपाई के दाम आकाश छू रहे हैं। अकेला साहित्यकार जिस की आर्थिकता स्वस्थ भी नहीं है। वैसे भी दुराव होता है —पुस्तक प्रकाशन के विचार से ही घबरा उठता है अतः यह बोझ मिल कर बांटा गया है।

'वाणी' की उपलब्धि यह तो है ही कि उसकी तीसरी पुस्तक प्रशंसित व चर्चित होने जा रही है, उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि यह भी है कि उसने नगर को ऐसा वातावरण दिया जिसके दबाव में प्रो० जगदीश 'सविता' जैसे फक्कड़ मनमौजी जैसे लेखक अनुभवी साहित्यकार हाथ में कलम पकड़ने को मजबूर हुए और भीमसेन त्यागी से सम्बन्धित 'यह व्यक्ति' जैसा संस्मरण सामने आया।

पहले कविता व कहानी के दो संग्रहों की तुलना में यह संग्रह लेखों के स्तर व संख्या की दृष्टि से बहुत आगे, उन्नति की ओर बढ़ने का स्पष्ट संकेत देता है। अनेक परिचितों के लेखन को पढ़ कर आनन्दमिश्रित सुखद आश्चर्य होता है कि क्या इतने बीज मेरी धरती के गर्भ में अंकुरण की प्रतीक्षा में थे।

आज, जब साहित्य पढ़ने-लिखने का वातावरण कम से कमतर होता चला जा रहा है और पाश्चात्य दूरदर्शनी प्रभाव हमें घेरता चला जा रहा है—अचानक ऐसे वातावरण को चीरता, एक हरियाए जंगल के बीच होने का अहसास कराता है यह संग्रह।

'साक्षात्कार' के अन्तर्गत विमल मित्र, पं० सीताराम चतुर्वेदी, कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर, कतील शिफाई, शमशेर तथा अमृतलाल नागर हैं।

पं० सीताराम जैसे आचार्य से बात करना जैसे आमों से लदे वृक्ष को हिलाना भर है। जितनी बार हिलाओ वह उतनी बार पके फल टपकाता ही चला जाता है। उन जैसी शख्सियत इतनी भरी पूरी है कि देते चले जाने को उनके पास बहुत कुछ है। ठीक यही अनुभूति स्व० विमल मित्र जैसे साहित्य के वट वृक्ष की छाया में होती थी। महात्मा गांधी बाबू श्यामसुन्दर दास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, लाला भगवान दीन, मुंशी प्रेमचन्द और बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर जैसी हस्तियों के सानिन्ध्य में रहे व्यक्ति को तो जैसे छू कर देखने को मन हो उठता है। इतने महापुरुष केवल किताबी नहीं, समीप की हस्ती लगते हैं।

प्रभाकर जी के लेखन का कहीं गहरे मनन कर डॉ० कृष्णचन्द्र गुप्त ने उन्हें बार-बार घेरा है। प्रभाकर जी का यह उत्तर, क्रांति और विद्रोह को जैसे परिभाषित करता है कि— 'विद्रोह व्यवस्था को तोड़ता है और क्रांति उसमें नई व्यवस्था लाती है। विरोध, विद्रोह और क्रांति—ये तीन खण्ड हैं।'

कतील शिफाई से मीरा गौतम, उनके रेल के डिब्बे में बैठते समय मिली लगती है। कतील शिफाई जैसी शख्सियत से उनके लेखन को पढ़े-गुने व्यक्ति द्वारा जैसा साक्षात्कार

होना चाहिए था, वह सब रह गया। उनका मानवतावादी रूप, साहित्यकार रूप के साथ प्रस्तुति की अपेक्षा रखता था।

शमशेर का जो संकोची, छुई-मुई सा, बार-बार अपने लेखन को काटता-सुधारता व्यक्तित्व, विश्रांत वसिष्ठ की कलम से निकला है, वह उनके अन्तरंग पहलू को खोलता है। उनके इस तरह के एकाकी जीवन, और उनके चुप्पे से अन्त को लेकर उनके देहांत के बाद इधर काफी कुछ छपा है, उसमें इस लेख की टीस कुछ और इज़ाफा करती है।

'भेंट वार्ता' में केवल एक लेख है डॉ० विश्वनाथ मिश्र का—भक्त सूरदास जी से आचार्य शुक्ल की भेंट।' इस रोचक काल्पनिक वार्तालाप के केन्द्र में शुक्ल जी की यह मान्यता है कि—'लोक संघर्ष से उत्पन्न विविध व्यापारों की योजना, सूरदास की रचनाओं में नहीं है, और जीवन की गम्भीर समस्याओं से इसी तटस्थता के कारण, उनमें वह वस्तु गाम्भीर्य नहीं है जो तुलसीदास की रचनाओं में है।' डॉ० मिश्र लेख के अन्त में कवि रत्नाकर जी द्वारा तुलसी के लेखन पर कुछ आरोप लगवा कर, उनके उत्तर नहीं रख पाए हैं और विस्तार भय से लेख को समेटते से लगते हैं।

'संस्मरण' के अन्तर्गत कुल सतरह लेख हैं। इनमें 'उसे सांप ने घेरे से बाहर निकाला', 'यह व्यक्ति', 'बेटी की विदाई,' 'अन्तिम पहर', 'कामरेड और तावीज'—अविस्मरणीय हैं। इनमें से कुछ तो साफ-साफ ऐसे लेखकों द्वारा लिखे लगते हैं जिन्होंने पहली बार कलम पकड़ी है पर जिन की अनुभूति गहन है और यही इन लेखों का सौन्दर्य भी है। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते' में पुरुष स्वार्थ और शोषण तथा नारी का पति परमेश्वर मान, उस पर सर्वस्व अर्पण का भाव, तथा इस भाव के परिणामस्वरूप उस की रुग्ण मानसिकता, बड़ा ही करुणा-जनक सफल संस्मरण हैं।

'रेखाचित्र' में 'दूसरों का घर बनाने वाले'—में भीमसेन त्यागी ने उन मजदूरों को करीब से देखा है जिनका शोषण आर्थिक से लेकर शारीरिक तक का होता है। बहुत कुछ इन पर लिखकर, दया दिखाकर, आज भी अपने आस-पास उनकी स्थिति यथावत बनी हुई है। यह दुश्चक्र नहीं ही टूटता।

'व्यक्ति व्यंजक' निबन्धों के अन्तर्गत तीन निबन्ध हैं। इनमें 'हारशृंगार की मौत' के बहाने लेखक ने मुजफ्फर नगर का अतीत लिया है। यह शहर पहले किस तरह था—अच्छा पहलू पकड़ा है। दूसरा महत्वपूर्ण निबन्ध—'आचार्य द्विवेदी-आत्मीयता की प्रतिमूर्ति हैं।

आचार्य जी के स्नेह व प्यार को लेखक ने याद किया है। द्विवेदी जी जैसे महान व्यक्तित्व अपने में एक विशाल संस्था थे और जब किसी भी व्यक्ति में, वह साहित्य के प्रति सात्विक समर्पण भाव या स्फुलिंग भांप लेते थे तो उसके लिए उनके हृदय के द्वार सदा-सदा के लिए खुल जाते थे। उन्हीं जैसे महान पथ-प्रदर्शकों के कारण आज भी उस परम्परा में

विद्वान, हिन्दी साहित्य की सेवा करते चले आ रहे हैं। 'भ्रांतियां और उनका निवारण' जैसी वेदप्रकाश गर्ग जी की पुस्तक इसी परम्परा की एक कड़ी है।

'यात्रा वृत्तांत' में विष्णु प्रभाकर के गंगोत्री तथा अमरनाथ यात्रा के दो छोटे रोचक विवरण हैं। उनकी जबानी हमने कुछ और छोटे-छोटे यात्रा संस्मरण सुने हैं—उनका अपना मजा है।

'डायरी' में 'दो' और 'चार' तिथियों के साथ गिरिराज किशोर और शमशेर हैं। एक गिरिराज और दूसरे शमशेर--दोनों ही बार-बार पठनीय।

सम्पादकीय में कमलसिंह ठीक ही कहते हैं कि संस्मरण, आत्मकथा, ललित निबन्ध, व्यक्तिव्यंजक निबन्ध आदि में बहुत निकट का सम्बन्ध है। यही स्थिति रेखाचित्र व शब्द चित्र की भी है। उनका यह भी कथन सही है कि साक्षात्कार, चर्चा, परिचर्चा एवं भेंटवार्ता में भी बहुत निकट का सम्बन्ध है। उनका विश्लेषण पठनीय है।

कुल मिल कर 'विविधा', प्रत्येक नगर में, साहित्य संस्थाओं के लिए एक उदाहरण व प्रेरणा बन सकती है, यदि वे आगे बढ़ना व सीखना चाहें तो। □

चिट्ठी पन्ना

'शीराज़ा हिन्दी' का अद्यतन अंक मिला निश्चय ही पत्र-पत्रिकाओं की फ़िज़ूल भीड़ में शीराज़ा की अपनी पहचान है, सामग्री में नवीनता तथा चयन में सावधानी, पत्रकारिता की जान है। आपने इनकी सावधानी बरती है और पाठकीयता की रक्षा की है।

इसके लिए बधाई स्वीकार करें।

शंकर दयालसिंह
संसद सदस्य
राज्य सभा, दिल्ली

शीराज़ा अप्रैल, मई 94 का नया अंक देखा, सामग्री रोचक और आवरण, मोहक लगे।

उत्तरोत्तर प्रगति की कामना करता हूं।

माधवेन्द्र राय
भुवनेश्वर, उड़ीसा

साहित्य मूल्यों की सुरुचिपूर्ण पत्रिका देखकर प्रसन्नता हुई। अहिन्दी भाषी प्रदेश हिन्दी के लिए इतना जागरूक है ? आपका श्रम सार्थक हो।

शुभकामनाएं

विपिन मोहन
कानपुर

शीराज़ा का अक्तूबर अंक मिला, डॉ० कामता कमलेश का लेख 'मारीशस की स्वतंत्रता में हिन्दी की भूमिका, शंकरदयाल सिंह का आत्म संवाद 'मन एक बावरा अहेरी' और चन्द्रकांता कृत 'वितस्ता यहां बहती है' पर बेबाक समीक्षा आपने खूब दी है। डॉ० आदर्श को बधाई।

सुनन्दा प्रभाकर
सहारनपुर

शीराज़ा के कुछ ताज़ा अंक मिले, कहीं कुछ अनियमितता खटकती है। वैसे यह मेरी प्रिय पत्रिका है। चाव से पढ़ता हूं, देर से आती है तो तकलीफ होती है, दो रुपये में ऐसी

पठनीय पत्रिका मिलना कमाल है ! राजेन्द्र पटोरिया का व्यंग्य लेख 'शौक एक अदद पालतू का' मजेदार है, अन्य सामग्री भी । राज्य में ऐसी परिस्थितियों के बावजूद आप मेहनत कर रही हैं । सफलता की शुभकामना करता हूं ।

मंगलेश कटारिया
धनबाद

जब कभी शीराज़ा मिलती है तो प्रसन्न होता हूं । दूर-दराज़ जंगल में बैठना और कुछ पढ़ने को पा लेना छाया-सा सुख देता है । जितनी सुन्दर सामग्री होती है उतनी ही रोचकता और ताज़गी भी । वर्तमान तकनीकी युग में प्रोडक्शन पर कुछ और ध्यान दिया जाए तो फिर सोने पर सुहागा हो ।

मधुरेश प्रसाद
पक्षरापाली
(म० प्र०)

बरेली में एक मित्र के यहां शीराज़ा का अगस्त सितम्बर '94 का अंक देखा, रंगारंग रोचक और पठनीय सामग्री में 'इक्कीसवीं सदी का नाट्य मुहावरा' 'संवाद' के तहत आपने जम्मू-कश्मीर राज्य के मेधावी युवा रंगकर्मी श्री बलवंत ठाकुर से चंचल डोगरा की बातचीत प्रस्तुत करके हिन्दी के पाठक एवं रंगप्रेमी जगत को उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व के और निकट लाने में पहल की । बधाई ! अपने महत्व तथा वर्चस्व के तमाम दावों से परे बेबाक बलवंत ठाकुर भारतीय रंचमंच को नये आयाम दे रहे हैं ।

आज के व्यक्ति को मंच पर स्थापित करने के पक्षधर, अपनी रंग प्रतिभा के आभा मंडल में लिपटे बलवंत ठाकुर के आगे अभी और सूरज हैं—अभी और सीढ़ियां हैं । मेरी शुभकामनायें ।

आशा है भविष्य में अन्य प्रतिभाओं को भी सामने लायेंगी।

अनंत विशिष्ट देसरला
जयपुर

इस अंक के लेखक

1. महेश आनन्द
   C-2, 61 B
   लारेंस रोड, दिल्ली—110035
2. डॉ० भारतभूषण
   गवर्नमेंट डिग्री कालेज, उधमपुर
3. मोती लाल साकी
   कल्चरल अकादमी, जम्मू
4. अर्जुन देव मजबूर
   वार्ड नं० 12
   तालाब सैलियां रोड, गढ़ी, उधमपुर
5. प्रो० देवेन्द्र सिंह
   पंजाबी विभाग
   जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू
6. निर्मल विनोद
   1-C सुशील निवास
   हरि सिंह नगर
   कोटली बस्ती (रिहाड़ी कालोनी) जम्मू 180005
7. प्रो० शिव निर्मोही
   ग्रा० पो० आ० पैंथल
   ज़िला उधमपुर (जम्मू-कश्मीर)
8. अवतारकृष्ण राज़दान
   68/3 त्रिकुटा नगर जम्मू 180012

9. चन्द्रकांता
बी-769, पालम विहार
गुड़गांव 122017 हरियाणा

10. द्विजेन्द्र द्विज
राजकीय पोलीटेक्नीक कालेज
हमीरपुर 177030 (हि०प्र०)

11. सुरेन्द्र चतुर्वेदी
कुंदन नगर; अजमेर 305001

12. प्रद्युम्न दास वैष्णव
राष्ट्रभाषा महाविद्यालय
मु पो०आ० पञ्जरापाली
ज़िला रायपुर म०प्र०

12. चन्द्रप्रकाश माया
दैनिक हिन्दुस्तान पटना—1
बिहार

13. मोहन सपरा
3461 के० जी० 1
विकासपुरी नई दिल्ली

14. डॉ० अशोक जेरथ
आकाशवाणी धर्मशाला
(हिमाचल प्रदेश)

15. डॉ० सरबजीत
हिन्दी विभाग
पंजाबी यूनिवर्सिटी
पटियाला—147002

16. निदा नवाज़
कोइल, पुलवामा, कश्मीर

17. रामकृष्ण धर
c/o कश्मीर आर्टस
निकट S.B.I. शिव मार्कीट
रैम्बल
ज़िला उधमपुर (जम्मू-कश्मीर)
182121

18. राजेन्द्र परदेसी
63 आवास विकास कालोनी
बस्ती, उ. प्र. 272001

19. महाराज कृष्ण सन्तोषी
H/No. 98, शिवनगर लेन—2
तालाब तिल्लो
निकट डाकघर जम्मू तवी

20. जीलानी बानो
178-ए मुअज्ज़मपुरा
हैदराबाद, 500001, (आंध्रप्रदेश)

21. सुरजीत
सी. सुदर्शन पार्क
नई दिल्ली, 110015

22. बंसी निर्दोष
द्वारा श्री एम० के० पारिमू
रेडियो कश्मीर जम्मू

23. शिबन कृष्ण रैणा
2/537 अरावली बिहार
अलवर (राजस्थान) 301001

24. हरिकृष्ण कौल
सी. 2/2316 वसन्त कुंज
नई दिल्ली

25. डॉ० आदर्श
25 एम आई. जी.
हाउसिंग कालोनी
उधमपुर, (ज. क.)